पर्यावरण (Environment)

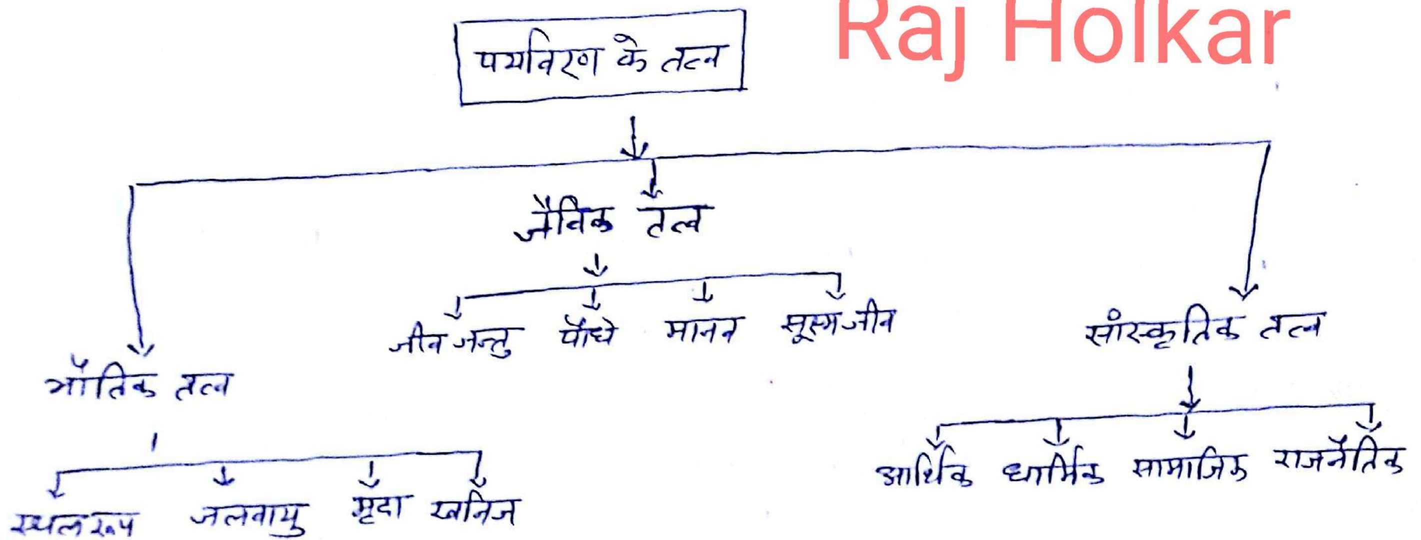
①

⇒ **परिभाषा :-** पर्यावरण जैव (सजीव) और अजैव (निर्जीव) घटकों और किसी जीव के आसपास के व्यवहार, प्रभाव और घटनाओं का कुल योग है।

अथवा

पर्यावरण से अभिप्राय उन परिस्थितियों से है जो किसी जीव पर प्रभाव डालती हैं और जीव पर उनकी प्रतिक्रिया भी होती है। ये परिस्थितियाँ भौतिक, सामाजिक अथवा सांस्कृतिक हो सकती हैं और जीव की वृद्धि, विकास, स्वभाव, जीवन आदि को प्रभावित करती हैं।

⇒ **पर्यावरण के तत्व/घटक/कारक/अंग (Elements of Environment) :-**



* **भौतिक तत्व :-** इसके अंतर्गत स्थान, स्थल रूप, जलीय भाग, जलवायु, मृदा, शैल एवं खनिज आते हैं जो मानव विकास के क्षेत्र की परिवर्तनशील विशेषताएँ, उसके सुअवसरों तथा प्रतिबंधक अवस्थितियों को सुनिश्चित करते हैं।

* **जैविक तत्व :-** विभिन्न प्रकार के जैविक तत्व जैसे - पौधे, जीव-जन्तु, मानव एवं अन्य सूक्ष्म जीव मिलकर जीवमण्डल की रचना करते हैं।

* **सांस्कृतिक तत्व :-** सांस्कृतिक तत्वों में मुख्य रूप से आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक एवं धार्मिक परंपराएं शामिल होती हैं। ये सब मिलकर सांस्कृतिक पर्यावरण की रचना करते हैं।

पारिस्थितिक संगठन के विभिन्न स्तर

⇒ **प्रजाति (Species)** :- ये ऐसे समान जीवों का समूह होता है जो अन्तः प्रजनन में सक्षम हैं और संतति (बच्चे) पैदा करते हैं। जैसे - शेर, चीता, कमल, मानव, चूहा आदि विभिन्न।

⇒ **व्यष्टि (Organism)** :- यह किसी पारितंत्र की आधारभूत एकल संरचनात्मक इकाई होती है। जैसे किसी पारितंत्र में एक जाति का शरीर धारी - हिरण, चीता, हाथी, गाय आदि।

⇒ **समष्टि (Population)** :- यह एक ही प्रजाति की जनसंख्या को दर्शाता है जैसे - किसी पारितंत्र में हिरणों की संख्या।

* ये किसी दिए हुए समय में किसी विशिष्ट स्थान में पाए जाने वाले एक ही प्रजाति के ऐसे समूह हैं जो स्वतंत्र रूप से अन्तः प्रजनन कर सकते हैं।

⇒ **समुदाय (Community)** :- यह किसी दिए गए पारितंत्र में सभी प्रकार की प्रजातियों की जनसंख्या को बताता है। जैसे एक पारितंत्र में पादप, कीड़े, छोटे व बड़े जानवर।

⇒ **पारितंत्र (Ecosystem)** :- एक दिए गए क्षेत्र में जैविक एवं अजैविक घटकों के अन्तर्क्रिया से बना तंत्र।

⇒ **बायोम (Biome)** :- यह किसी बड़े क्षेत्र (Region) या उपमहाद्वीप (Subcontinent) के पारितंत्र को बतलाता है।

* यह एक जैसी जलवायु एवं वनस्पति को धारण करने वाला खास क्षेत्र होता है।

⇒ **इकोटोन (Ecotone)** :- यह दो बायोम या पारितंत्र के मध्य का संक्रमणकालीन या अतिव्यापन (overlapping) का क्षेत्र होता है जिसमें दोनों बायोम या पारितंत्र के जन्तु तथा पादप पाए जाते हैं।

* इकोटोन में जीवों की भारी प्रजातिगत विविधता पायी जाती है।
* उदाहरण : आर्द्रभूमियाँ, ज्वारनदमुख, मैंग्रोव आदि।

*** इकोटोन की विशेषताएं** :-

- ये अत्यधिक चौड़े व अत्यधिक संकरे हो सकते हैं।
- ये दो या अधिक पारितंत्रों का संक्रमण स्थल होता है अतः तनाव का क्षेत्र होता है।
- इसमें कुछ ऐसे जीव पाए जाते हैं जो इसके दोनों आसन्न पारितंत्र से भिन्न होते हैं।
- इसमें इसके निकटवर्ती पारितंत्रों के सम्मिलित गुण पाए जाते हैं।

⇒ **कोर प्रभाव (Edge Effect) :-** जहाँ दो पारितंत्र आपस में मिलते हैं वहाँ विशाल विविधता पायी जाती है। कभी-कभी इकोटोन में कुछ प्रजातियों की संख्या और जनसंख्या घनत्व अन्य समुदायों की अपेक्षा बहुत अधिक होता है। इसे कोर प्रभाव (core / Edge Effect) कहते हैं।

⇒ **पारिस्थितिकी निकेत (Ecological Niche) :-** निकेत का तात्पर्य किसी प्रजाति के समस्त क्रियाकलापों और संबंधों के उस योग से है जिसके द्वारा वह प्रजाति अपनी उत्तरजीविता तथा जनन के लिए अपने पर्यावास के संसाधनों का उपयोग करती है।

* यह एक ऐसा सूक्ष्म निवास होता है जिसमें एक ही प्रकार की जाति निवास करती है।
* किसी प्रजाति का निकेत अद्वितीय होता है।
* यदि दो प्रजातियों का निकेत समान है तो इनमें एक-दूसरे के साथ उस समय तक स्पर्धा होती रहती है जब तक एक प्रजाति विस्थापित नहीं हो जाती।

⇒ **की-स्टोन प्रजाति :-**

* वह प्रजाति अथवा प्रजातियों का समूह जिसका समुदाय अथवा पारिस्थितिकी तंत्र पर प्रभाव मात्र उनकी अत्यधिक संख्या के कारण ही नहीं बल्कि आशा से कहीं अधिक उनके कार्यों से अभिव्यक्त होता है। उसे की-स्टोन प्रजाति कहा जाता है।
* कोई ऐसा पौधा जो दूसरे जन्तुओं को भोजन और आश्रय/आवास प्रदान करता है या उसकी भूमिका वहाँ के समुदाय या पारितंत्र में विशेष हो की-स्टोन प्रजाति बन सकता है।
* वे प्रभावी प्रजातियाँ जो किसी पारितंत्र में ऊर्जा के प्रवाह, खाद्य श्रृंखला और खनिजों के चक्रण को भी प्रभावित करती हैं और अपनी परस्पर क्रियाओं से समुदाय की संरचना और जैविक घटकों को परिवर्तित कर सकती हैं। की-स्टोन प्रजाति कहलाती हैं।
* उदाहरण :- बड़े परभक्षी : शेर, चीता, तेंदुआ, भेड़िया आदि।
  उत्पादक : पौधे, वृक्ष, फाइटोप्लैंकटन
  जीवाणु / कवक : राइजोबियम, एनाबिना, नॉस्टॉक, एजोबैक्टर
  अन्य : प्रवाल भित्तियाँ एवं अनेक छोटे बड़े जीव।

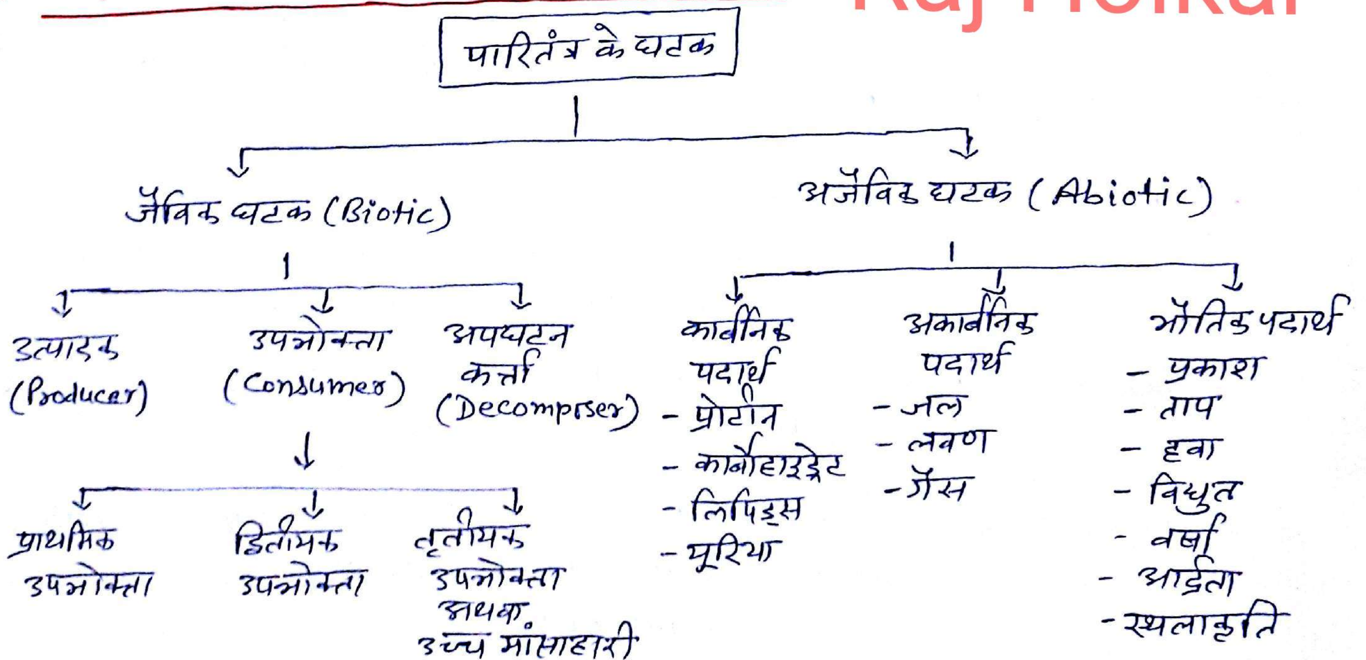
पारिस्थितिक तंत्र (Ecological System)

⇒ **परिभाषा :-** एक पारिस्थितिक तंत्र पर्यावरण के जीवित एवं अजीवित घटकों के मध्य की अंतःक्रियाओं का योग अथवा परिणाम होता है।

⇒ **पारितंत्र की विशेषताएं :-**

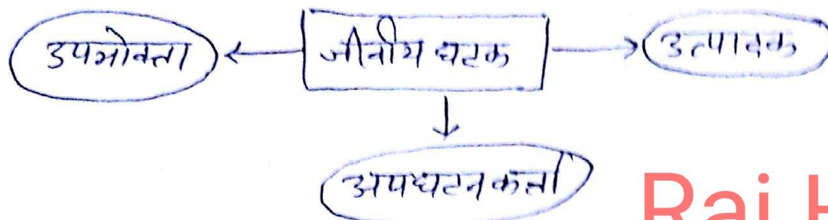
* इसकी रचना 3 मूलभूत घटकों से होती है - i) ऊर्जा ii) जीव iii) भौतिक घटक
* पारितंत्र में ऊर्जा का मुख्य स्त्रोत सूर्य है।
* पारितंत्र में ऊर्जा का प्रवाह एक दिशीय होता है।
* पारितंत्र में पदार्थों का गमन भू-जैव रासायनिक चक्र के माध्यम से एक चक्रीय रूप में संपादित होता है।
* पारितंत्र की निजी उत्पादकता होती है।
* पारितंत्र का प्रभाव सभी प्राणियों पर प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से पडता है।
* पारितंत्र गतिशील होता है।
* पारितंत्र स्वयंपूर्त (self supporting) और स्वनियंत्रित प्रणाली (self-controlling system) पर आधारित होता है।
* पारितंत्र की उत्पादकता उसमें ऊर्जा की सुलभता पर निर्भर करती है।
* पारितंत्र एक खुला तंत्र है जिसमें पदार्थों तथा ऊर्जा का सतत निवेश तथा बहिर्गमन होता है।

⇒ **पारितंत्र के घटक (Components of EcoSystem) :-**



1. जीवीय घटक (Biotic Components) :-

जीवीय घटक में शामिल तत्वों (Components) को तीन भागों में विभाजित किया जाता है -



A. उत्पादक (Producers) :-

* ये स्वयंपोषी होते हैं।
* इसके अंतर्गत हरे पेड़-पौधे, कुछ खास जीवाणु (जो स्वयं अपना भोजन बनाते हैं), शैवाल एवं पादप प्लवक (Planktons - गहरे समुद्री जल में) आदि शामिल किए जाते हैं।

B. उपभोक्ता (Consumers) :-

* ये अपना भोजन स्वयं नहीं बनाते तथा भोजन के लिए अन्य सजीवों पर निर्भर रहते हैं। इन्हें मुख्यतः तीन भागों में बाँटा जाता है -

i) प्राथमिक उपभोक्ता :-

* ये शाकाहारी होते हैं। भोजन के लिए उत्पादकों पर निर्भर रहते हैं।
* इसके अंतर्गत - गाय, बकरी, हिरण, खरगोश, टिड्डा, ऊँट आदि शामिल हैं।

ii) द्वितीयक उपभोक्ता :-

* ये अपना भोजन प्राथमिक उपभोक्ताओं से प्राप्त करते हैं अथवा शाकाहारियों को भोजन के रूप में खाते हैं।
* ये मांसाहारी होते हैं। इसमें - बिल्ली, भेड़िया, सियार, गीदड़, चिड़िया, मानव, चूहा कुत्ता आदि।

iii) तृतीयक उपभोक्ता :-

* ये उच्च मांसाहारी जीव होते हैं जो प्राथमिक एवं द्वितीयक उपभोक्ताओं को खाते हैं।
* इसमें शेर, बाघ, चील, शार्क, तेंदुआ आदि शामिल हैं।

C. अपघटनकर्ता (Decomposers) :-

* इसमें बैक्टीरिया एवं कवक को शामिल किया जाता है।
* ये उत्पादक एवं उपभोक्ताओं के मृत शरीरों को नष्ट कर पृथ्वी की सफाई करते हैं। ये पृथ्वी का मेहत्तर कहलाते हैं।

⇒ प्रमुख अजीवीय घटक (Abiotic Components) :-

i) **प्रकाश (Light)** :- प्रकाश, प्रकाश-संश्लेषण के लिए आवश्यक होता है। सभी जीवों के लिए प्रकाश ऊर्जा का अंतिम स्त्रोत है।

ii) **वर्षा** :- यह जल वितरण, वनस्पति के उगने आदि के लिए आवश्यक है।

iii) **तापमान** :- अनेक जीव अपने क्रियाकलाप 30°F और 185°F के मध्य ही कर सकते हैं। तापमान में परिवर्तन सीमाकारी कारक के रूप में कार्य करता है।

iv) **गैसें** :- स्थलीय एवं जलीय दोनों प्रकार के जीवों के लिए वायुमण्डलीय गैसों की आवश्यकता होती है।

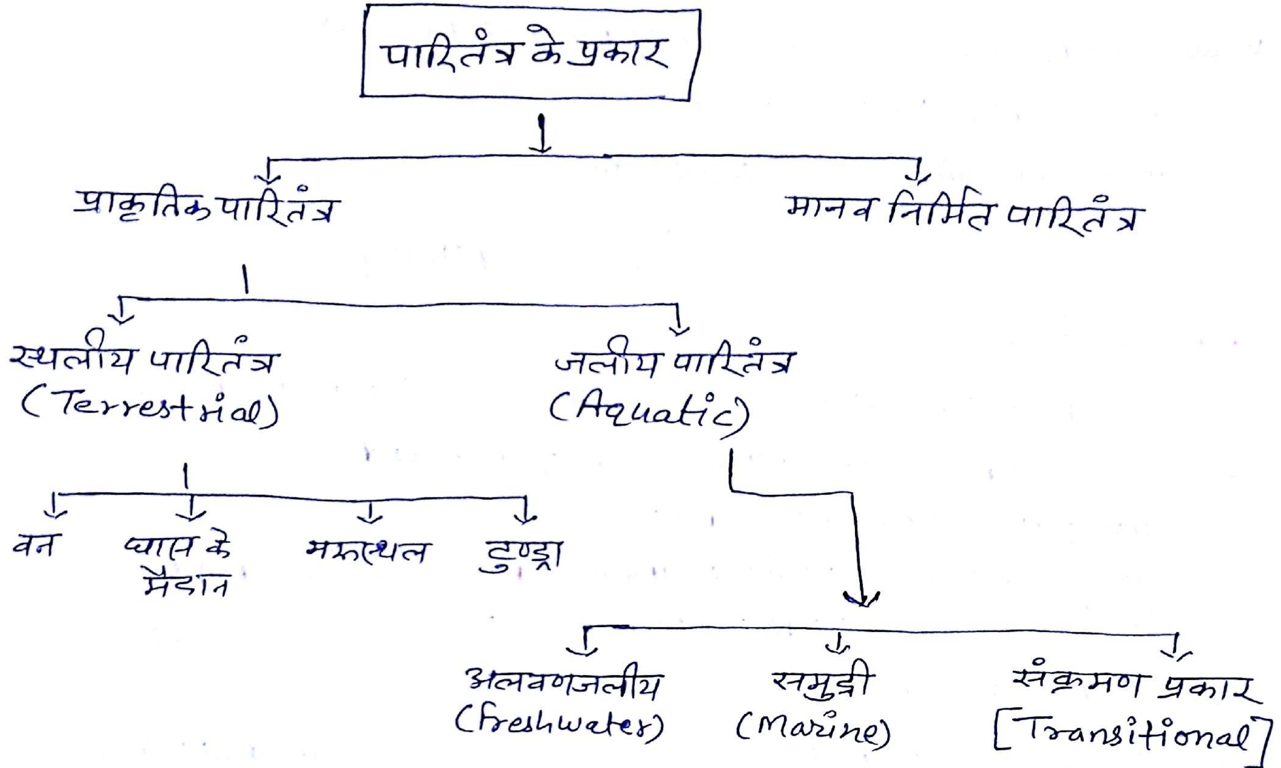
v) **ऊँचाई** :- विभिन्न ऊचाइयों पर जलवायु, वर्षा एवं तापमान में भिन्नताएँ पायी जाती हैं जो कि वनस्पति एवं जीवों की उपस्थिति को निर्धारित करती हैं।

vi) **अक्षांश** :- अक्षांश में परिवर्तन तापमान, वर्षा एवं जलवायु में परिवर्तन लाता है अतः पारितंत्र के लिए यह भी महत्वपूर्ण कारक है।

vii) **स्थलाकृतियां** :- अलग-अलग प्रकार के स्थलरूप जैसे - पर्वत, घाटी, भृगु चट्टानें आदि विभिन्न प्रकार से पारितंत्र को प्रभावित करती हैं।

पारितंत्र के प्रकार
Types of Ecosystem

* पारिस्थितिकी तंत्र / पारितंत्र को मुख्यत: दो भागों में बाँटा जाता है -



⇒ **स्थलीय पारितंत्र :-**

1. **वन पारितंत्र :-**

   * वन पारिस्थितिकी तंत्र के लिए तापमान, आर्द्रता एवं मृदा अनिवार्य तत्व हैं।

⇒ **वनों के प्रकार : -**

- वन (Forest)
  - उष्णकटिबंधीय वन
    - सदाबहार
    - पर्णपाती या मानसूनी
  - शीतोष्ण कटिबंधीय
    - सदाबहार
    - पर्णपाती
    - भूमध्य सागरीय वन
  - शंकुधारी या टैगा वन

वन पारितंत्र (Forest Ecosystem)

1. उष्णकटिबंधीय वन :-

* उष्णकटिबंधीय वनों को दो भागों में विभाजित किया जाता है -
  - i) उष्णकटिबंधीय सदाबहार वन
  - ii) उष्णकटिबंधीय पर्णपाती / मानसूनी वन

⇒ उष्णकटिबंधीय सदाबहार वन :- [धरती का फेफड़ा]

*** विशेषताएँ :-**

- ये मुख्यतः भूमध्य रेखा के उत्तर एवं दक्षिण में 28° अक्षांश तक विस्तृत
- सालभर वर्षा एवं सालभर समान जलवायु वाला क्षेत्र
- तापमान एवं आर्द्रता बहुत अधिक।
- वर्षा सालभर होती है औसत वार्षिक वर्षा 200 cm से अधिक
- यहाँ लैटराइट प्रकार की मिट्टी पायी जाती है।

*** वनस्पति की विशेषताएँ :-**

- यहाँ ऊंचे वृक्षों की अधिकता होती है वृक्षों की ऊँचाई 30-40 मीटर तक।
- वृक्षों के ऊपरी भाग में शाखाएँ निकलकर वितान (Canopy) बनाती हैं।
- वृक्षों की पत्तियां चिकनी, मोटी एवं सदाबहार होती हैं।
- वितान के कारण प्रकाश जमीन तक नहीं पहुँच पाता अतः धरातल पर वनस्पति बहुत ही कम मात्रा में होती है।
- यहाँ अधिपादप (Epyphytes) और कठलताओं (Liana) की प्रधानता होती है।
- वृक्षों में मुख्य रूप से : महोगनी, आबनूस, रोजवुड आदि कठोर लकड़ी वाले वृक्ष पाए जाते हैं।
- यहाँ अधिकतर वृक्षों पर रहने वाले जानवर एवं विशालकाय जानवर निवास करते हैं जैसे - हाथी, बंदर, गैंडा, सूअर, शेर आदि।

*** वितरण :-**

- इन वनों का विस्तार, अमेजन बेसिन, कांगो बेसिन, अफ्रीका का गिनी तट, अण्डमान एवं निकोबार द्वीप समूह, जावा, सुमात्रा, उत्तरी-पूर्वी ऑस्ट्रेलिया, दक्षिण-पूर्वी एशिया, दक्षिण-मध्य अमेरिका आदि क्षेत्र।

नोट :- ब्राजील में इन वनों को सेल्वास कहा जाता है।

⇒ उष्णकटिबंधीय पर्णपाती वन / मानसूनी वन :-

*** भौतिक विशेषताएं :-**

- यहाँ एक स्पष्ट नमी एवं शुष्कता का समय (ऋतुएं) होता है।
- वार्षिक वर्षा 100-200 cm वार्षिक होती है।
- मृदा भूरे रंग की एवं पोषक तत्वों की धनी होती है।
- यहाँ की जलवायु परिवर्तित होती रहती है।
- तापमान एवं आर्द्रता कभी कम एवं कभी ज्यादा होते हैं।

*** वनस्पति की विशेषताएं :-**

- वृक्ष शुष्क ग्रीष्म ऋतु में अपनी पत्तियाँ गिरा देते हैं।
- वृक्षों का केवल एक ही स्तर पाया जाता है।
- वृक्षों की ऊँचाई 20-35 मीटर के मध्य होती है।
- यहाँ वृक्षों में मुख्य रूप से - सागवान, शीशम, साल व बाँस पाए जाते हैं।

*** विस्तार :-**

- इन वनों का विस्तार - दक्षिण - पूर्व एशिया, भारत, ब्राजील, पश्चिम अफ्रीका, दक्षिण - मध्य अमेरिका, उत्तरी ऑस्ट्रेलिया और प्रशांतीय क्षेत्रों में है।

2. शीतोष्ण कटिबंधीय / मध्य अक्षांशीय वन :-

इन वनों को मुख्य रूप से तीन भागों में विभाजित किया गया है -

i) मध्य अक्षांशीय सदाबहार
ii) मध्य अक्षांशीय पर्णपाती
iii) भूमध्य सागरीय वन

⇒ मध्य अक्षांशीय (शीतोष्ण कटि०) सदाबहार वन :-

* ये वन उपोष्ण प्रदेशों में महाद्वीपों के पूर्वी तटीय भागों में पाए जाते हैं।

* इन वनों में चौड़ी पत्ती वाले वृक्ष जैसे: लॉरेल, मैग्नेलिया, यूकेलिप्टस आदि वृक्ष पाए जाते हैं।

* इन वनों का विस्तार - द० चीन, जापान, द० ब्राजील, द० पू० संयुक्त राज्य अमेरिका आदि क्षेत्रों में है।

⇒ मध्य अक्षांशीय (शीतोष्ण कटि.) पर्णपाती वन :-

* इन वनों में वृक्ष शीत ऋतु में अपनी पत्तियाँ गिराते हैं।
* इन प्रदेशों में ग्रीष्म ऋतु लंबी एवं शीत ऋतु छोटी होती है।
* यहाँ व्यापक वर्षा होती है।
* इन वनों में पाए जाने वाले वृक्षों में चौड़ी पत्तीवाले वृक्षों की अधिकता होती है
* मुख्य वृक्ष लॉरेल, मैग्नेलिया, वालनट, मैपल, चेस्टनट, ऐश, बीच, बलूत, हिकोरी, पॉपलर एवं साइकामोर वृक्ष प्रमुख हैं।
* यहाँ पॉडजॉल प्रकार की मिट्टी पायी जाती है।
* इन वनों का विस्तार - उ.पू. अमेरिका, दक्षिण चिली, एवं शीतल जलवायु वाले प्रदेश।

⇒ भूमध्य सागरीय वन :-

* मध्य अक्षांशों में महाद्वीपों के पश्चिमी भाग में ये वन पाए जाते हैं।
* यहाँ ग्रीष्म ऋतु गर्म एवं शुष्क, तथा शीत ऋतु ठण्डी एवं आर्द्र होती है।
* यहाँ वर्षा शीत ऋतु में होती है।
* यहाँ के प्रमुख वृक्ष - कार्क, जैतून, पाइन तथा रसदार फलों के वृक्ष जैसे - अंगूर, नींबू, नारंगी, अनार व नाशपाती आदि पाए जाते हैं।
* इस पारितंत्र को बौना वन या चैपरल (Chaparral) भी कहा जाता है।

3. शंकुधारी वन या टैगा वन :-

* इन वनों के वृक्ष कोणधारी होते हैं पत्तियाँ नुकीली एवं पतली होती हैं ताकि बर्फ न जम सके एवं वाष्पोत्सर्जन भी कम हो।
* इन वनों की लकड़ी मुलायम होती है।
* वृक्षों में मुख्य रूप से - चीड़, देवदार, फर, स्प्रूस आदि पाए जाते हैं।
* प्रमुख जंतु लोमड़ी, मिंक, समूर, साइबेरियन क्रेन आदि पाए जाते हैं।
* यहाँ अम्लीय पॉडजॉल मिट्टी पायी जाती है।
* इन वनों का विस्तार आर्कटिक वृत्त (66½°) के चारों ओर एशिया, यूरोप, व उत्तरी अमेरिका महाद्वीप में है। इसके अलावा ऊँचे पर्वतों पर भी ये वन पाए जाते हैं।
* शंकुधारी वनों का विस्तार सभी वन क्षेत्रों में सर्वाधिक है जबकि इनकी जैवविविधता व उत्पादकता अन्य वन पारितंत्रों से कम है।

2. घास पारितंत्र

* घास के मैदान उन क्षेत्रों में पाए जाते हैं जहाँ सुपरिभाषित उष्ण और शुष्क, गर्म एवं वर्षामय जलवायु होती है।
* घासस्थल पारितंत्र को 'सवाना पारितंत्र' भी कहा जाता है।
* घास पारितंत्र में वृक्षहीन शाकीय पौधों के आवरण रहते हैं।
* घासस्थलीय क्षेत्र कम वार्षिक वर्षा वाला होता है, जो कि 25-75 cm प्रतिवर्ष के बीच रहती है।
* घासस्थल की प्राथमिक उत्पादकता वर्षा की मात्रा से सीधे संबंधित रहती है।
* घासस्थल में औसतन कुल जीव भार का लगभग आधा भाग जमीनी सतह के नीचे अवस्थित रहता है। प्राथमिक उत्पादकता की तुलना में जड़ों की भागीदारी ज्यादा होती है जो कि कुल उत्पादकता की 75-85 प्रतिशत तक होती है।
* घास का मैदान धरातल का लगभग 20% भाग घेरे हुए हैं। ये उष्ण व शीतोष्ण दोनों क्षेत्रों में पाए जाते हैं।

⇒ विश्व के विभिन्न घास के मैदान :-

i) उत्तरी अमेरिका - प्रेयरी
ii) यूरेशिया - स्टेपीज
iii) अफ्रीका - सवाना
iv) दक्षिण अमेरिका - पम्पास
v) ऑस्ट्रेलिया - डाउन्स
vi) दक्षिण अफ्रीका - वेल्ड
vii) न्यूजीलैण्ड - कैंटरबरी
viii) हंगरी - पुस्टास
ix) ब्राजील - कैम्पोस

मरुस्थलीय पारितंत्र
Desert Ecosystem

* तापमान के आधार पर मरुभूमि को गर्म मरुभूमि तथा ठण्डी मरुभूमि में विभाजित किया जाता है।
* अधिकतर मरुस्थल उत्तरी एवं दक्षिणी गोलार्द्ध के उष्णकटिबंधीय कर्क और मकर रेखा के पास महाद्वीपों के पश्चिमी तट पर 15° से 35° अक्षांश पर पाई जाती है।

⇒ मरुस्थलीय पौधों की विशेषताएँ :-

* ये अधिकतर झाड़ियाँ हैं।
* इनमें पत्तियाँ नहीं होती हैं या फिर बहुत छोटी हैं और नुकीली होती हैं।
* पत्तियाँ तथा तने गूदेदार होते हैं जो जल को संचित रखती हैं।
* कुछ पौधों के तनों में प्रकाश संश्लेषण के लिए क्लोरोफिल पाया जाता है।
* जड़ें बहुत लंबी एवं गहराई तक विस्तृत होती हैं।
* प्रमुख पौधों में - नागफनी, बबूल, यूफोर्बिया आदि।

⇒ मरुस्थलीय क्षेत्र की भौतिक विशेषताएं :-

* यहाँ वार्षिक वर्षा 30 cm से कम होती है।
* मरुस्थल में दिन का तापमान बहुत अधिक एवं रात का तापमान बहुत कम होता है।
* मरुस्थलीय मृदा बलुई एवं लवणीय होती है। ये पोषक तत्वों में धनी होती है।
* मरुस्थलीय पारितंत्र में जीव संख्या कम होती है।
* यदि जल की आपूर्ति कर दी जाए तो मरुस्थलीय मृदा अत्यधिक उपजाऊ होती है।

⇒ मरुस्थलीय पारितंत्र के जीवों की विशेषताएं :-

* ये तेज दौड़ने वाले जीव होते हैं।
* ये प्रायः रात्रिचर जीव होते हैं जो सूर्य की गर्मी से दूर रहते हैं।
* ये गाढ़े (सान्द्र) मूत्र का उत्सर्जन करके जल को संरक्षित रखते हैं।
* जन्तु एवं पक्षी सामान्यतः लम्बी टांगों वाले होते हैं।
* ऊँट के पैर गद्देदार होते हैं एवं कई दिनों तक बिना पानी पिए रह सकता है।

⇒ **रेगिस्तानी मरुस्थल के जीव :-** जंगली गधा, लोमड़ी, गैजल, ग्रेट इंडियन बस्टर्ड, ब्लैक बक, हिरन, ऊँट, साँप एवं बिच्छू व छिपकली आदि।

⇒ **शीत मरुस्थल के जीव :** चिरू, हिमतेंदुआ, जंगली याक, एशियाटिक आइबेक्स, भूरा भालू, कियांग, नेक्ड क्रेन आदि।

टुण्ड्रा पारितंत्र (Tundra Ecosystem)

* टुण्ड्रा के दो प्रकार हैं-
  i) आर्कटिक टुण्ड्रा : यह उत्तरी एवं दक्षिणी गोलार्द्ध में आर्कटिक वृत से ऊपर वृक्ष रहित क्षेत्र।
  ii) एल्पाइन टुण्ड्रा : यह पर्वतों का अति उच्च वर्फ से ढका हुआ भाग होता है।

⇒ वितरण :-

* आर्कटिक टुण्ड्रा उत्तरी गोलार्द्ध में 'वृक्ष सीमा' के ऊपर ध्रुवीय हिम आवरण के नीचे एक सतत पट्टी के रूप में फैला हुआ है। उत्तरी कनाडा, अलास्का, यूरोपीय रूस, साइबेरिया व आर्कटिक महासागर के द्वीपों में फैला हुआ है।
* दक्षिणी ध्रुव पर अण्टार्कटिक टुण्ड्रा बहुत छोटा है।
* एल्पाइन टुण्ड्रा ऊँचे पर्वतों के वर्फ से ढके भागों पर पाया जाता है।

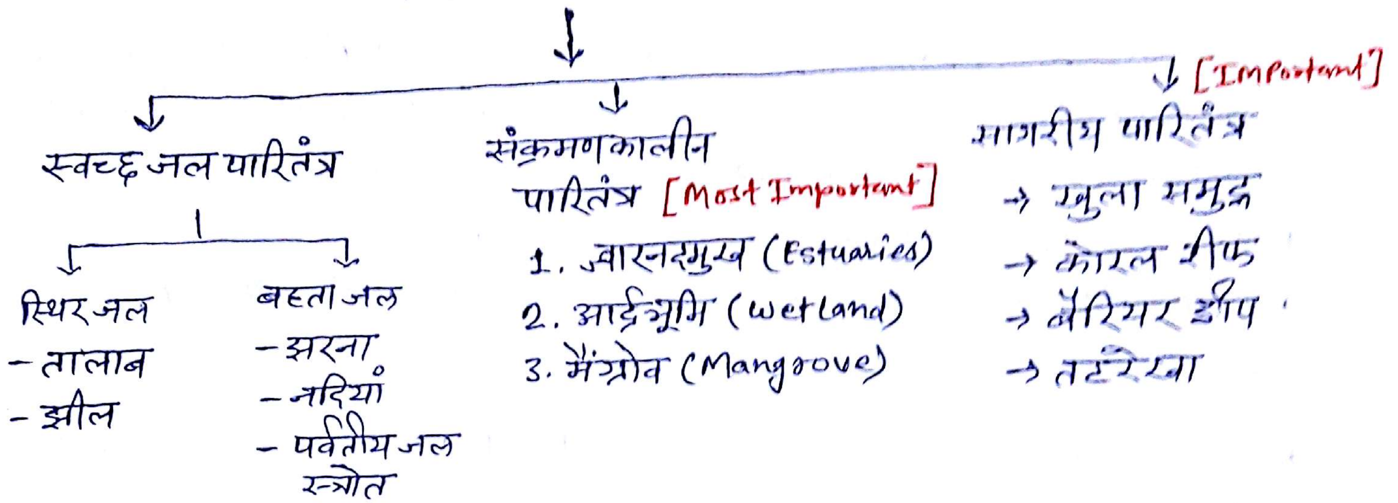
⇒ पादप वर्ग की विशेषताएं :-

* यहाँ अधिकतर गुच्छेदार घास ही पायी जाती है जिनकी ऊँचाई 5 से 8 सेमी. तक होती है।
* यहाँ विश्व की कुल पादप प्रजातियों की मात्र 3% ही विकसित हो पायी हैं।
* प्रमुख पादपों में आर्कटिक दलदल, कारिबू मॉस, पासक्यू फूल, गुच्छेदार सैक्सिफ्रेज, बीयरबेरी इत्यादि।

⇒ टुण्ड्रा पारितंत्र में जन्तुओं की विशेषताएं :-

* सर्दी से बचने के लिए इनके शरीर पर मोटी उपत्वचा (वसायुक्त) और एपीडर्मल रोम पाए जाते हैं।
* टुण्ड्रा के स्तनधारियों के शरीर का आकार बहुत बडा होता है लेकिन पूंछ एवं कान का आकार छोटा होता है ताकि उनके पृष्ठीय सतह से ऊष्मा की हानि को रोका जा सके।
* तापरोधन के लिए उनका शरीर फर से ढका रहता है।
* टुण्ड्रा प्रदेश के प्रमुख जन्तु - ध्रुवीय भालू, रेण्डियर, सील, वालरस, कारिबू, कस्तूरी बैल, आर्कटिक लोमडी, लेमिंग, बर्फ उल्लू, मसखरा बतख, व गिलहरी आदि।

जलीय पारितंत्र
(Aquatic Ecosystem)



⇒ जलीय पारितंत्र को प्रभावित करने वाले कारक :-

i) **तापमान (Temperature)** :- जलीय जीव ताप के प्रति कम सहाह्य होते हैं। तापमान में बदलाव जलीय जीवन को प्रभावित करता है।

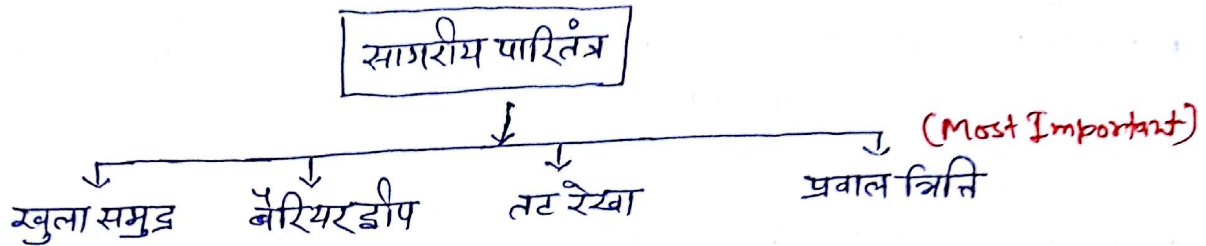
ii) **लवणता (Salinity)** :- जलीय पारितंत्र को प्रभावित करने वाले कारकों में लवणता सर्वाधिक प्रमुख है। जलीय पारितंत्र को लवणता के आधार पर भी विभाजित किया जाता है।

iii) **जलयोजित ऑक्सीजन** :- स्थलीय पारितंत्र की तुलना में जलीय पारितंत्र में लगभग 150 गुना कम ऑक्सीजन उपलब्धता होती है। एवं अधिक ज्यादा गहराई पर जाने पर ऑक्सीजन उपलब्धता कम हो जाती है जो जलीय जीवों व पारितंत्र के लिए सीमाकारी प्रभाव है।

iv) **पोषक तत्व (Nutrients)** :- जलीय पारितंत्र के लिए पोषक तत्वों की एक संतुलित मात्रा का होना आवश्यक है। अत्यधिक पोषक तत्वों की वृद्धि से सुपोषण (Eutrophication) की समस्या उत्पन्न होती है।

सागरीय पारितंत्र
(Marine Ecosystem)

⇒ सागरीय पारितंत्र के प्रकार :-



⇒ खुला समुद्र (Open Sea) :-

* समुद्री पारितंत्र में आहार श्रृंखला सूर्यप्रकाश, ऑक्सीजन व कार्बन डाई ऑक्साइड, की सुलभता, लवणता, पोषक तत्वों की उपलब्धता आदि पर निर्भर करती है।
* समुद्र में 200 मीटर तक मण्डल को प्रकाशित (Photic) तथा उससे नीचे के क्षेत्र को अप्रकाशित (Aphotic) क्षेत्र कहते हैं।
* खुला समुद्र पारितंत्र समुद्र का प्रकाशित मण्डल होता है जो सतह से 200 मीटर की गहराई तक ही मुख्यत: पाया जाता है।
* प्रकाशित मण्डल में प्राथमिक उत्पादक (फाइटो प्लैंक्टन व हरे पौधे) प्रकाश - संश्लेषण द्वारा कार्बनिक पदार्थों का संश्लेषण करते हैं।

खुले समुद्र पारितंत्र के पादप व जन्तु :-

* समुद्री जल का तापपरिवर्तन स्थल की अपेक्षा न्यूनतम होता है।
* सागरीय जीवों को मुख्य रूप से 3 भागों में बाँटा जाता है -

i) **प्लैंक्टन समुदाय** :- ये धारा के विपरीत नहीं तैर सकते। ये सागर की ऊपरी तल पर पाए जाते हैं।

* ये प्रकाश संश्लेषण क्रिया द्वारा अपना भोजन स्वयं बनाते हैं अत: स्वपोषी हैं।
* फाइटोप्लैंक्टन पृथ्वी की अधिकांश ऑक्सीजन का निर्माण करते हैं।
* फाइटोप्लैंक्टन समुदाय में शैवाल, फ्लैगलेट्स तथा साइनोबैक्टीरिया आते हैं।
* इस श्रेणी के जन्तुओं को जूप्लैंक्टन कहते हैं इस समूह में कोपपॉड, क्रील, टिनोफोर्स, जेलीफिश आदि आते हैं।

ii) नेक्टन समुदाय (Nekton Community):-

* ये धाराओं के विपरीत तैरने में सक्षम बड़े आकार के शक्तिशाली जन्तु होते हैं।
* इस समूह का प्रमुख जन्तु मछली है।
* इस समूह में हेरिंग, प्लेस, कॉड, स्क्विड्स, सील, टूथेड व्हेल, ~~[illegible]~~, डॉल्फिन, सीकाऊ (Sea Cow) आदि शामिल हैं।

iii) बेंथिक समुदाय (Benthik Community):-

* इस समूह में सागर के तल के समीप रहने वाले पादप व जन्तु आते हैं।
* इस वर्ग के प्रमुख पादप सीवीड्स (Sea weeds), बड़े शैवाल, जोस्टेरा, टर्टलघास (Thalasia), आदि शामिल हैं।
* इस वर्ग के जन्तु कड़े खोल में रहने वाले जन्तु अधिक होते हैं।
* इस वर्ग के प्रमुख जन्तु - बाइवेल, मुजेल, ऑयस्टर, स्टारफिश, शार्क, ऑक्टोपस, व टैंगाफिश आदि हैं।

⇒ बैरियर द्वीप पारितंत्र:-

* बैरियर द्वीप पारितंत्र जैव विविधता के प्रमुख स्रोत हैं। सागर में मृदा के अवसाद से इनका निर्माण होता है।
* बैरियर द्वीप तटीय क्षेत्र को तूफान (सुनामी) आदि से बचाते हैं।
* यह स्थल एवं जलीय पारितंत्र के बीच का एक तंत्र है जिसमें दोनों प्रकार की प्रजातियाँ पायी जाती हैं।

⇒ तटरेखा पारितंत्र (Shoreline Ecosystem):-

* यह निम्न ज्वार तथा उच्च ज्वार के क्षेत्र के बीच में पाया जाता है।
* इस पारितंत्र को अन्तर्ज्वारीय पारितंत्र भी कहा जाता है।
* इस पारितंत्र में बाइवेल, ब्रीटल स्टार, क्लैम, केकड़ा, हरमिट क्रेब, सीस्टार (Sea star), घोंघा (Snails), स्टारफिश आदि पायी जाती हैं।

प्रवाल भित्ति पारितंत्र
Coral Reefs Ecosystem

⇒ प्रवाल एक चूना प्रधान जीव है जो मुख्यतः कठोर रचना वाले कैल्सियम के खोल में रहता है।

⇒ आवश्यक भौतिक दशाएं :-

* प्रवाल मुख्य रूप से उष्णकटिबंधीय सागरों (30°N से 30°S के बीच) में पाए जाते हैं।
* प्रवाल का विकास विशेष रूप से दक्षिणी प्रशांत महासागर में हुआ है।
* प्रवाल के जीवित रहने के लिए 20°C से 21°C तापमान की आवश्यकता होती है अधिक तापमान होने पर प्रवाल विरंजन होने लगता है। 20°C से कम भी ना हो।
* प्रवाल के लिए कम गहराई वाला उथला सागरीय तट के समीप का स्थान सर्वाधिक उपयुक्त होता है। अधिक गहराई में प्रकाश एवं ऑक्सीजन की कमी।
* जल अवसाद रहित होना चाहिए। अवसादों के कारण प्रवाल के मुख बंद हो जाते हैं। एवं वे मर जाते हैं।
* जल की लवणता (Salinity) सामान्य होनी चाहिए। [27% से 35% तक हो]
* कोरल मुख्यतः महाद्वीपीय तटों के आसपास पाए जाते हैं क्योंकि महासागरीय धाराएं उन्हें आवश्यक भोजन सामग्री प्रदान करती हैं एवं गहराई भी कम होती है।
* कोरल के लिए स्वच्छ एवं सामान्य लवणता (Fresh water) वाला जल उपयोगी होता है किन्तु नदियों द्वारा सागरीय जल ~~को~~ ~~कम~~ में मिलने वाले स्थानों पर प्रवाल भित्ति नहीं पायी जाती क्योंकि गतिशील जल में वे अपनी कॉलोनियाँ नहीं बना पाते।

⇒ क्या होता है मूंगा/प्रवाल :-

प्रवाल (Coral) एक जीवित प्राणि है जो जूजैंथिली नामक शैवाल के साथ सहोपकारिता (symbiotic) में रहता है। जूजैंथिली शैवाल, कोरल को भोजन प्रदान करता है तथा कोरल, जूजैंथिली शैवाल को आवास एवं सुरक्षा प्रदान करता है।

* प्रवाल का रंग जूजैंथिली शैवाल के कारण होता है।
* प्रवाल विरंजन में शैवाल या तो अपना क्लोरोफिल की मात्रा को कम कर देता है या प्रवाल शैवाल को अपने शरीर से निकाल देता है।

⇒ प्रवाल भित्ति के प्रकार :-

* प्रवाल भित्ति 3 प्रकार की होती है -
  i) तटीय प्रवाल भित्ति (Fringing Reef)
  ii) अवरोधक प्रवाल भित्ति (Barrier Reef)
  iii) वलयाकार प्रवाल भित्ति (Atoll)

i) तटीय प्रवाल भित्ति (Fringing Reef) :-

* ये प्रवाल भित्तियाँ महाद्वीपीय या द्वीपीय तटों से लगी रहती हैं।
* कभी-कभी प्रवाल भित्ति एवं महाद्वीपीय तट के बीच अन्तराल आ जाने से लैगून का निर्माण हो जाता है।

⇒ वितरण :- दक्षिण फ्लोरिडा, अंडमान एवं निकोबार, मन्नार की खाडी (रामेश्वरम)

ii) अवरोधक प्रवाल भित्ति (Barrier Reef) :-

* इनका विस्तार तट के समानान्तर होता है
* ये अन्य दो प्रकार की प्रवाल भित्तियों से विशाल होती है।
* विश्व की सबसे बडी ~~अवरोधक~~ प्रवाल भित्ति ऑस्ट्रेलिया के उत्तर-पूर्वी तट पर स्थित ग्रेट बैरियर रीफ है।

iii) वलयाकार प्रवाल भित्ति (Atoll) :-

* इनका आकार अंगूठी या घोडे की नाल के समान होता है।
* इनके केन्द्र में लैगून होते हैं व बीच में खुले भाग पाए जाते हैं।

⇒ एटॉल 3 प्रकार की होती हैं -

i) एक ऐसी प्रवाल वलय जिसमें एक वृत्ताकार भित्ती छिछले लैगून को चारों ओर से घेरे हुए हो एवं उस लैगून में कोई द्वीप न हो।

ii) एक ऐसी प्रवाल वलय जिसमें भित्ति एक ऐसे लैगून को घेरती हो जिसमें एक द्वीप अवस्थित हो।

iii) ऐसी वलयाकार प्रवाल भित्ति जिसके मध्य पहले कोई द्वीप न रहा हो परन्तु आगे चलकर सागरीय तरंग निक्षेपण से द्वीप का निर्माण हो गया हो।

⇒ प्रवाल भित्तियों के लाभ :-

i) पर्यटन एवं मनोरंजन गतिविधियों से प्राप्त आय एवं रोजगार
ii) प्रवाल भित्ति मछली व शैल मछली की जनसंख्या को बनाए रखती है अतः प्रवाल भित्ति मानव को समुद्री भोजन उपलब्ध करवाती है।
iii) प्रवाल भित्ति में निवास करने वाले अनेक जीवों का उपयोग औषधियों में भी किया जा रहा है।
iv) प्रवाल भित्ति जलीय पारितंत्र की लगभग 25% प्रजातियों को आवास प्रदान करती है।
v) प्रवाल भित्ति जैव विविधता का प्रमुख केन्द्र है इसलिए इन्हें समुद्र का वर्षावन भी कहा जाता है।
vi) प्रवाल भित्तियाँ तूफानों एवं सुनामी से तटों को सुरक्षा प्रदान करने के लिए प्राकृतिक तरंग अवरोधक की तरह कार्य करती हैं।

⇒ प्रवाल भित्ति को खतरा (Threat to the Coral Reefs):-

- एलनिनो (El Nino)
- हरिकेन (Hurricanes)
- सागरीय अम्लीकरण
- रोग (Diseases)
- परमाणु परीक्षण
- पर्यटन
- तटीय विकास
- वैश्विक तापन (Global Warming)
- समुद्री प्रदूषण
- अवसादों में वृद्धि
- कोरल खनन
- जहाजों की धुलाई
- मछली पकड़ने की गलत पद्धति
- प्रवाल खाने वाले समुदाय

नोट :- समुद्री पारितंत्र में प्रवाल एक की - स्टोन प्रजाति है।

⇒ प्रवाल विरंजन (Coral Bleaching):-

प्रकाश की तीव्रता बढ़ने अर्थात् ग्लोबल वार्मिंग से प्रवाल में उपस्थित जूजैंथिली प्रकाश संश्लेषण की दर को बहुत अधिक बढ़ा देते हैं जिससे प्रवाल के ऊतकों में ऑक्सीजन खतरनाक स्तर तक बढ़ जाती है इसे प्रति संतुलित करने के लिए या तो प्रवाल जूजैंथिली को अपने शरीर से निकाल देता है या जूजैंथिली खुद को रंगीन क्लोरोफिल की मात्रा को कम कर देते हैं। ~~अथवा~~ दोनों ही स्थितियों में प्रवालों में पोषक तत्वों में कमी आ जाती है और वे अपने वास्तविक सफेद रंग में दिखने लगते हैं। यही प्रक्रिया जिसमें प्रवाल रंगीन से सफेद रंग में बदल जाता है प्रवाल विरंजन कहलाती है।

संक्रमणकालीन जलीय पारितंत्र
Transitional Ecosystem

⇒ Transitional Ecosystem में मुख्यत: 3 पारितंत्रों को शामिल किया जाता है -

i) ज्वारनद मुख पारितंत्र (Estuaries Ecostem)

ii) आर्द्रभूमि पारितंत्र (Wetland Ecosystem)

iii) मैंग्रोव पारितंत्र (Mangrove Ecosystem)

1. ज्वारनदमुख पारितंत्र [Estuaries Ecosystem]

⇒ **क्या होता है ज्वारनदमुख ?**

नदियां जब डेल्टा न बनाकर सीधे समुद्र में मिल जाती हैं तब एश्चुअरी का निर्माण होता है। इसे संक्रमण स्थल इसलिए कहा जाता है क्योंकि यहाँ नदियाँ समुद्र से मिलती हैं एवं समुद्र व नदी दोनों के पारितंत्रों का मिलन स्थल होता है। यह एक ऐसा तटीय क्षेत्र होता है जिसका मुंह समुद्र की ओर खुलता है।

⇒ **ज्वारनदमुख पारितंत्र के लाभ :-**

- खाद्य उत्पादन
- उच्च जैविक उत्पादकता
- प्राकृतिक औषधियों का उत्पादन
- जीव जन्तुओं के लिए आवास
- नई प्रजातियों का वास
- मछली उत्पादन
- कचरे का नियमन
- जलवायु विनियमन
- जल चक्र की स्थिरता
- सांस्कृतिक एवं मनोरंजन केन्द्र
- प्राकृतिक सौन्दर्यता
- पोषक तत्वों का चक्रण

⇒ **ज्वारनदमुख पारितंत्र की विशेषताएं :-**

* यहाँ नदियों व समुद्र दोनों की विशेषताएँ पायी जाती हैं।
* एश्चुअरी क्षेत्र की लवणता 0.5 ppt से 35 ppt के बीच होती है।
* एश्चुअरी विश्व के सर्वाधिक सघन बसावट वाले क्षेत्रों में से एक है।
* यहाँ ज्वारीय गतिविधियाँ सीमित रहती हैं अत: यह शांत क्षेत्र होता है जो अनेक जीव-जन्तुओं के निवास के लिए अनुकूल होता है।
* एश्चुअरी प्रदूषण को नियंत्रित करता है।

⇒ **भारत में एश्चुअरी बनाने वाली नदियां :-** माही, तापी, नर्मदा एवं मांडवी नदियां

⇒ ज्वारनदमुख पारितंत्र की समस्याएं :-

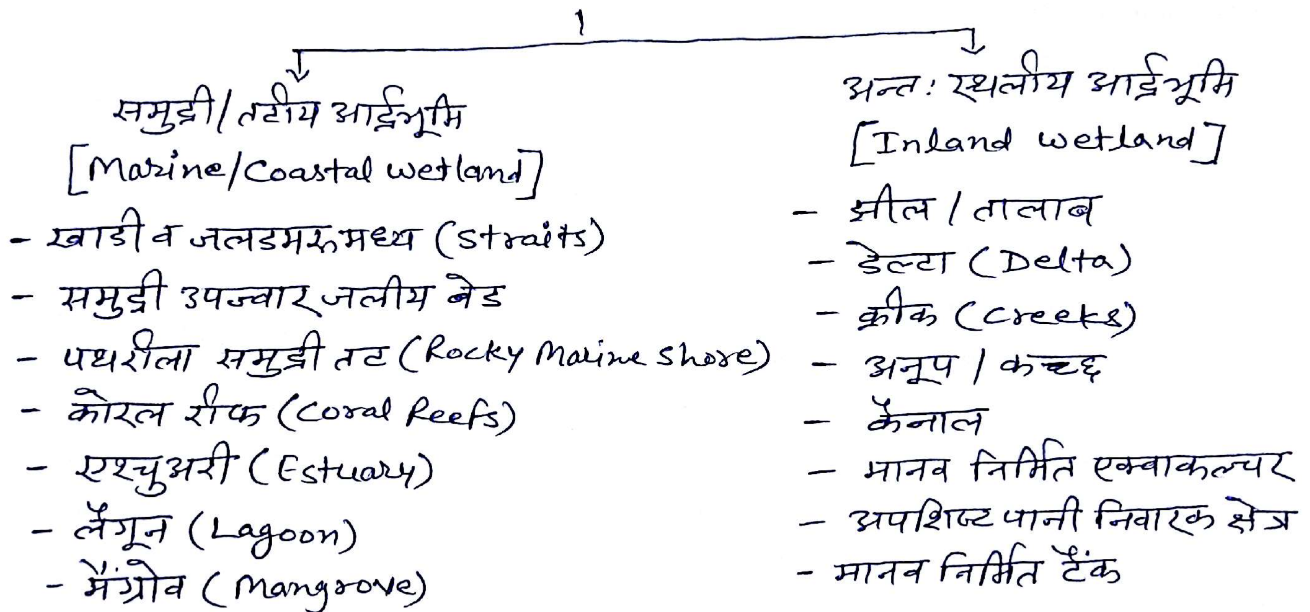
* नगरीय मल जल एवं औद्योगिक कचरे के इन क्षेत्रों में बहाव के कारण बुरा प्रभाव।
* मनोरंजन एवं पर्यटन का प्रभाव
* अति मत्स्यन
* नवीन प्रजातियों का आगमन
* बन्दरगाह एवं जल परिवहन प्रणाली
* जलवायु परिवर्तन
* भूमि उपयोग प्रतिरूप में परिवर्तन
* अवसादीकरण की समस्या
* सुनामी एवं तूफान

2. आर्द्रभूमि पारितंत्र
[Wetland Ecosystem]

⇒ क्या होती हैं आर्द्रभूमियां :-

* रामसर कन्वेंशन द्वारा दी गयी परिभाषा के अनुसार, दलदल (Marsh), पंकभूमि, पीट भूमि या जल, कृत्रिम या प्राकृतिक, स्थायी या अस्थायी, स्थिर जल या गतिमान जल तथा ताजा, खारा या लवणयुक्त जल क्षेत्रों को आर्द्रभूमि कहते हैं।"

⇒ आर्द्रभूमि का वर्गीकरण :-



⇒ आर्द्रभूमियों का महत्व :-

- भोजन
- स्वच्छ पानी
- जलवायु नियमन
- मृदा अपरदन से सुरक्षा
- प्राकृतिक आपदाओं से रक्षा
- प्रदूषण नियंत्रण
- मनोरंजन
- पर्यटन
- जैव विविधता आवास
- मृदा निर्माण
- पोषक तत्वों का चक्रण
- प्राथमिक उत्पादन

⇒ आर्द्रभूमियों की समस्याएं :-

- समुद्र स्तर का बढ़ना
- बाढ़ व सूखा
- हरिकेन आदि तूफानों से खतरा
- अति मत्स्यन व पर्यटन
- ठोस अपशिष्ट निपटान
- अपरदन
- जलवायु परिवर्तन
- भूमि जल का अतिदोहन
- आर्द्रभूमि का खनन
- उर्वरक, पेस्टीसाइड्स का मिलना
- कृषि, वानिकी आदि के लिए जल निकासी
- बाढ़ नियंत्रण के लिए बाँध, डाइक व समुद्री दीवार का निर्माण

⇒ आर्द्रभूमियों पर रामसर सम्मेलन, 1971 :-

* यह सम्मेलन रामसर (ईरान) में 1971 में सम्पन्न अन्तरसरकारी बहुउद्देशीय सम्मेलन था।
* इस सम्मेलन में आर्द्रभूमियों व उनके संसाधनों के संरक्षण और युक्तियुक्त उपयोग के लिए राष्ट्रीय कार्यवाही व अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग की रूपरेखा तय हुई।
* यह समझौता 1975 में लागू हुआ तथा भारत 1982 में इसमें शामिल हुआ।
* वर्तमान में कुल 169 पार्टियां इसमें शामिल हैं।

* पक्षकार देशों के प्रमुख दायित्व :-

- आर्द्रभूमियों को अंतर्राष्ट्रीय महत्व की आर्द्रभूमि सूचि में शामिल करना।
- आर्द्रभूमियों का उनके क्षेत्रों में बुद्धिमानीपूर्ण उपयोग को बढ़ावा देना।
- सीमा क्षेत्रीय आर्द्रभूमियों (दो या दो से अधिक देशों की सीमाओं पर अवस्थित), साझा पानी व्यवस्थाओं आदि में अंतर्राष्ट्रीय सहयोग को बढ़ावा देना।
- आर्द्रभूमि रिजर्व बनाना।

नोट :-

* विश्व आर्द्रभूमि दिवस प्रतिवर्ष 2 फरवरी को मनाया जाता है।
* पहला आर्द्रभूमि दिवस **1997** में मनाया गया।
* 2017 के लिए आर्द्रभूमि दिवस की थीम : Wetlands for Disaster Risk Reduction है।

⇒ रामसर समझौते के अंतर्गत भारत के 26 आर्द्रभूमि क्षेत्र :-

i) जम्मू कश्मीर : वूलर झील, सोमोरीरी झील (Tsomoriri Lake), होकेरा आर्द्रभूमि, सुरिन्सर - मानेसर झील

ii) हिमाचल प्रदेश : चन्द्रताल, पोंगडैम झील, रेणुका आर्द्रभूमि (सबसे छोटी आर्द्रभूमि भारत में)

iii) पंजाब : हरिके झील (कृत्रिम), कांजली झील, रोपड झील

iv) केरल : अष्टमुडी, षष्ठमकोट्टा, वेम्बनाद (भारत में सबसे बडी आर्द्रभूमि)

v) राजस्थान : सांभर झील, केवलादेव राष्ट्रीय उधान (मोंट्रेक्स रिकार्ड में शामिल)

vi) ओडीशा : चिल्का झील, भीतर कनिका झील

vii) आंध्रप्रदेश : कोल्लेरू झील

viii) असम : दीपोर बिल

ix) तमिलनाडु : पाइंट केलिमर वन्यजीव एवं पक्षी अभ्यारण्य

x) त्रिपुरा : रूद्र सागर झील

xi) मणिपुर : लोकटक झील (मोंट्रेक्स रिकार्ड में शामिल)

xii) उत्तर प्रदेश : ऊपरी गंगा नदी

xiii) पश्चिम बंगाल : पूर्वी कोलकाता आर्द्रभूमि

xiv) ~~के~~ मध्य प्रदेश : भोज आर्द्रभूमि

xv) गुजरात : नल सरोवर पक्षी अभ्यारण्य (सबसे बाद में जोडा गया)

⇒ भारत में आर्द्रभूमि वितरण :-

i) इनलैंड आर्द्रभूमि (प्राकृतिक) - 43%

ii) इनलैंड आर्द्रभूमि (कृत्रिम) - 30% [मानव निर्मित]

iii) तटीय आर्द्रभूमि (प्राकृतिक) - 24%

iv) तटीय आर्द्रभूमि (मानव निर्मित) - 3%

नोट :-

* **मोन्ट्रेक्स रिकॉर्ड :-** इसमें अंतर्राष्ट्रीय महत्व की उन आर्द्रभूमियों को सूचीबद्ध किया जाता है जिनमें मानवीय अतिक्रमण और पर्यावरण प्रदूषण के कारण पारिस्थितिकी संकट उत्पन्न हो गया है। यह रामसर कान्वेन्शन के अंतर्गत कार्य करता है।

⇒ **मोन्ट्रेक्स रिकार्ड में शामिल भारत की आर्द्रभूमियां :-** i) लोकटक झील (मणिपुर)

ii) केवलादेव राष्ट्रीय उधान (राजस्थान)

3. मैंग्रोव पारितंत्र (25)
[Mangrove Ecosystem]

⇒ क्या होता है मैंग्रोव ?

* मैंग्रोव सामान्यत: वे वृक्ष होते हैं जो उष्णकटिबंधीय और उपोष्ण कटिबंधीय क्षेत्रों के तटों, ज्वारनदमुखों, ज्वारीय क्रीक, पश्चजल (Backwater), लैगून, एवं पंक जमावों में विकसित होते हैं।
* ऐसा समझना गलत है कि मैंग्रोव केवल खारे पानी में उग सकते हैं, मैंग्रोव ताजा पानी में भी उग सकते हैं लेकिन ताजा पानी में इनकी वृद्धि कम होती है।

⇒ मैंग्रोव की विशेषताएं :-

* सभी मैंग्रोव पौधे अपनी जड़ों से पानी का अवशोषण करते समय नमक की कुछ मात्रा को अलग कर देते हैं। कुछ पौधे पत्तियों की कोशिकाओं से अतिरिक्त नमक निकालते हैं।
* मैंग्रोव पौधे अस्थिर भूमि में उगते हैं इनकी विलक्षण जड़ें इन्हें तेज धाराओं में भी स्थायित्व प्रदान करती हैं।
* मैंग्रोव में विशेष श्वसन जड़ों का विकास होता है जो ऑक्सीजन व CO_2 आदान-प्रदान करती हैं ये जड़ें 'न्यूमेटोफोर्स' कहलाती हैं।
* मैंग्रोव की कुछ प्रजातियों में जरायुजता (विविपैरी) का गुण पाया जाता है इसमें भ्रूण का विकास की प्रक्रिया पेड़ से फलों के गिरने से पहले ही प्रारंभ हो जाती है।
* वाष्पोत्सर्जन द्वारा पानी के उत्सर्जन को रोकने के लिए मोटी चिकनी पत्तियाँ होती हैं।
* मैंग्रोव पौधों में ऐसी जड़ें पायी जाती हैं जो गुरुत्वाकर्षण के विपरीत बढ़ती हैं।
* मैंग्रोव पौधे समुद्र तटों के दलदल में ही नहीं रेतीली एवं चट्टानी भूमि पर भी उग सकते हैं।

⇒ वन रिपोर्ट, 2015 में मैंग्रोव की स्थिति :-

* मैंग्रोव वन भारत में 4740 km^2 क्षेत्रफल में फैला है जो विश्व मैंग्रोव का 3% है।
* भारत का मैंग्रोव क्षेत्रफल कुल भौगोलिक क्षेत्रफल का 0.14% है।
* वर्ष 2013 की वन रिपोर्ट की तुलना में वन रिपोर्ट, 2015 में मैंग्रोव क्षेत्रफल में 112 km^2 की वृद्धि हुई है। सर्वाधिक वृद्धि (महाराष्ट्र में)

⇒ मैंग्रोव प्रजातियों का महत्व :-

* अनेक प्रजातियों के लिए प्राकृतिक शरण स्थल [जैव विविधता स्थल]
* अनेक जीवों के लिए भोजन के स्रोत
* प्राकृतिक जल शोधक
* पराबैंगनी किरणों से बचाव : पत्तियों में फ्लेवोनाइड पैदा होता है।
* हरित गृह प्रभाव को कम करना
* औषधीय उपयोग
* तटीय क्षरण को रोकना, बाढ़ नियंत्रण, प्राकृतिक आपदाओं (सुनामी) से सुरक्षा।
* अन्य आर्थिक लाभ : मत्स्यन, शहद प्राप्ति, लकड़ी, ईंधन कोयला आदि।

⇒ मैंग्रोव पारितंत्र के विनाश के कारण :-

* एक्वाकल्चर में वृद्धि से [मैंग्रोव क्षेत्र में कमी]
* कचरा, औद्योगिक अपशिष्ट, विषैले पदार्थ आदि छोड़ना [मैंग्रोव वृक्षों को हानि]
* हार्बर, पोर्ट आदि का निर्माण [मैंग्रोव पारितंत्र का प्रतिस्थापन]
* होटल, उद्योग व नए लोगों का वास → [मैंग्रोव का अतिदोहन]
* जलवायु परिवर्तन, सुनामी, बाढ़, तूफान → [मैंग्रोव पर नकारात्मक प्रभाव]

⇒ भारत में मैंग्रोव स्थल :-

- प. बंगाल - सुन्दरवन
- ओडीसा - चिल्का, भीतरकनिका, महानदी, स्वर्णरेखा, धमरा, देवी आदि।
- आंध्रप्रदेश - कोरिंगा, कृष्णा, पूर्वी गोदावरी
- तमिलनाडु - पिचवरम, मुथुपेट, पुलीकट, रामनद, काजुवेली
- अण्डमान एवं निकोबार : उत्तरी अण्डमान, निकोबार
- केरल - वेम्बनाड, कन्नूर
- कर्नाटक - कुंडापुर, कारवार, मंगलौर
- गोवा - गोवा
- महाराष्ट्र - रत्नागिरी, देवगढ़, कुंडलिका, मुंबरा दिवा, वेतरना, मालवन इत्यादि।
- गुजरात - कच्छ की खाड़ी, खम्भात की खाड़ी।

स्थलीय पारितंत्र की समस्याएं

1. वनोन्मूलन (Deforestation) :-

⇒ कारण :-

- वन भूमि का कृषि भूमि में परिवर्तन
- स्थानान्तरित या झूम कृषि
- वनों का चारागाह में परिवर्तन
- जलावन लकडी की मांग
- शहरीकरण तथा विकास परियोजनाएं
- वनों में लगने वाली आग
- औद्योगिक व व्यासायिक लकडी की मांग

⇒ प्रभाव :-

- मृदा अपरदन व आकस्मिक बाढ़
- जलवायु परिवर्तन
- जैव विविधता में कमी
- मरूस्थलीकरण में वृद्धि
- CO_2 की मात्रा में वृद्धि
- भूमण्डलीय तापन में वृद्धि
- वर्षा की मात्रा में कमी व असमानता
- जल चक्र में व्यवधान

⇒ रोकने के उपाय :-

- वन विनाश पर रोक लगाना
- अतिरिक्त वनारोपण करना
- वनों का संरक्षण करना
- वनों की आग पर रोकथाम
- ईंधन के वैकल्पिक स्त्रोतों में वृद्धि करना व लोगों को उपलब्ध करवाना।
- विकास परियोजनाओं में यथासंभव वनों को संरक्षण प्रदान करना
- पशुचारण पर रोक लगाना
- लोगों में वृक्षारोपण के प्रति जागरूकता फैलाना व वृक्षारोपण करवाना।
- सामुदायिक वन विकास को प्रोत्साहन देना

2. मरुस्थलीकरण (Desertification) :-

⇒ कारण :-

- अपर्याप्त जल संसाधन
- सूखा का प्रभाव
- औद्योगिक अपशिष्टों का निस्तारण
- उच्च जैविक (मानव व पशु) दबाव
- निर्वनीकरण व वन निम्नीकरण
- अति खनन

⇒ प्रभाव :-

- मृदा अपरदन में वृद्धि
- लवणीयता में वृद्धि
- भूमि की कमी
- भूमण्डलीय तापन
- फसल तंत्र की बर्बादी
- जनसंख्या पलायन
- वनस्पति विनाश
- मरुस्थल का विस्तार
- प्रजातियों का विनाश
- भुखमरी व खाद्यान्न की कमी
- आय की विषमता में वृद्धि
- गरीबी में वृद्धि
- अर्थव्यवस्था पर सीधा नकारात्मक प्रभाव

⇒ रोकने के उपाय :-

- बेहतर भूमि उपयोग, नियोजन व प्रबंधन
- मरुस्थलीकरण रोकने के लिए रक्षक पट्टी का निर्माण
- मृदा अपरदन पर नियंत्रण
- जल का समुचित उपयोग [जल संग्रह, बूंद-बूंद सिंचाई पद्धति]
- रेत का स्थिरीकरण करने के उपाय।
- पशुचारण पर रोक व वनस्पति विकास
- सिंचाई के लिए आधुनिक टपकन पद्धति का उपयोग
- कम पानी की आवश्यकता वाली कृषि का विकास
- वृक्षारोपण

जलीय पारितंत्र की समस्याएं

1. सुपोषण [Eutrophication] :-

⇒ क्या होता है सुपोषण ?

घरेलू कूडा करकट (अपशिष्टों) नाइट्रोजन और फॉस्फेट की बहुलता वाले उर्वरक के अंश, भूस्त्राव और औद्योगिक कचरा जब जल निकायों में मिलता है तो जल निकायों में बडी तीव्रता से पोषकों में वृद्धि होती है। पोषकों में वृद्धि होने से जलकुम्भी, पादप प्लवक व शैवाल तथा अन्य जलीय जीवों में वृद्धि होती है जिसके कारण जल में घुली हुई ऑक्सीजन की मांग (BOD) में वृद्धि होती है व अनेक जलीय जीव मरने लग जाते हैं। यही सुपोषण होता है।

⇒ सुपोषण के कारण :-

- औद्योगिक व नगरीय अपशिष्ट जल प्रवाह
- खनन उद्योग व और निपटान कचरा प्रवाह
- पशुओं के अपशिष्ट
- कृषि क्षेत्र के उर्वरक प्रवाह

⇒ सुपोषण के प्रभाव :-

- पानी की पारदर्शिता में कमी
- ऑक्सीजन अपर्याप्तता
- खाद्य जाल संकट
- मछलियों की मृत्यु
- शैवाल वृद्धि (Algal Bloom)
- प्रजाति विविधता में कमी
- जल प्रदूषण में वृद्धि

⇒ सुपोषण रोकने के उपाय :-

- पोषक तत्वों के प्रवाह पर नियंत्रण
- अल्ट्रासोनिक रेडियेशन
- कृषि में आवश्यक तत्वों का प्रयोग
- शैवाल फिल्टरेशन
- अपशिष्ट निपटान प्रबंधन
- जागरूकता में वृद्धि।

नोट:- शैवालों में बहुत अधिक और अचानक वृद्धि से पानी का रंग परिवर्तित हो जाता है इसे वॉटर ब्लूम (Water Bloom) या एल्गल ब्लूम (Algal Bloom) कहते हैं।

पारितंत्र की उत्पादकता
[Ecological Productivity]

⇒ **उत्पादकता का अर्थ :-**

* किसी पारितंत्र द्वारा इकाई समय में कार्बनिक पदार्थ की संचित मात्रा उसकी उत्पादकता कहलाती है।
* उत्पादकता स्थिर एवं गतिशील प्रकार की होती है।

⇒ **उत्पादकता के प्रकार :-**

1. **प्राथमिक उत्पादकता :-** उत्पादकों की प्रकाश संश्लेषण एवं रसायन संश्लेषण द्वारा संग्रहित सौर ऊर्जा की दर को प्राथमिक उत्पादकता कहते हैं। प्राथमिक उत्पादकता को दो भागों में बांटा जाता है।

   a. **सकल प्राथमिक उत्पादकता (Gross Primary Productivity) :-**
   यह प्रकाश संश्लेषण द्वारा प्राप्त कुल ऊर्जा होती है।

   b. **शुद्ध प्राथमिक उत्पादकता (Net Primary Productivity, NPP) :-**
   यह वह ऊर्जा होती है जो श्वसन (पौधों द्वारा) में खर्च ऊर्जा को सकल अथवा कुल संचित ऊर्जा में से घटाने के बाद पौधों/वनस्पति में संचित रहती है।

   [शुद्ध प्राथमिक उत्पादकता = सकल प्राथमिक उत्पादकता − श्वसन में खर्च ऊर्जा]

   नोट :- प्राथमिक ऊर्जा/उत्पादकता स्थिर प्रकार की होती है।

2. **द्वितीय उत्पादकता :-** यह उपभोक्ता स्तर पर ऊर्जा संग्रह की दर को व्यक्त करती है। यह उत्पादकता एक जीव से दूसरे जीव में गतिशील रहती है। अतः यह एक गतिशील प्रकार की उत्पादकता होती है।

3. **शुद्ध उत्पादकता (Net Productivity) :-** यह उत्पादकता किसी इकाई समय में शुद्ध प्राथमिक उत्पादन में से विषम भोजियों द्वारा उपयुक्त ऊर्जा की मात्रा को घटाकर प्राप्त की जाती है।

   [शुद्ध उत्पादकता = शुद्ध प्राथमिक उत्पादकता − विषम भोजियों द्वारा प्रयुक्त ऊर्जा]

⇒ उत्पादकता को प्रभावित करने वाले कारक :-

* भौतिक कारक : तापमान, जल की मात्रा, गहराई, जलवायु ।
* रासायनिक कारक : पोषक तत्वों की आपूर्ति।
* जैविक कारक : सहजीविता, प्रतिस्पर्धा, परजीविता, तटस्थता ।
* अन्य : क्षेत्रीयता, सामाजिक संगठन, प्रदूषण, मानवीय हस्तक्षेप etc. ।

⇒ उत्पादकता का वितरण :-

1. उच्च उत्पादकता प्रदेश : जलोढ़ मैदान, आर्द्र वन प्रदेश (उष्ण एवं शीतोष्ण) छिछले जलीय भाग, व गहन कृषि वाले क्षेत्र ।

2. मध्यम उत्पादकता प्रदेश :- घास स्थल, छिछली झीलें, कृषि प्रदेश (गहन कृषि प्रदेशों को छोड़कर)

3. निम्न पारिस्थितिकीय उत्पादकता प्रदेश : आर्कटिक व अण्टार्कटिका प्रदेश, बंजर भूमि, मरुस्थल व गहरे समुद्रीय भाग ।

नोट :- महाद्वीपीय भाग की शुद्ध ~~प्रा~~ प्राथमिक उत्पादकता - 669 gm/m²/year
महासागरीय भागों की शुद्ध प्राथमिक उत्पादकता - 155 gm/m²/year
[अतः महाद्वीपीय भाग की उत्पादकता महासागरीय भाग से अधिक होती है।]

पोषण स्तर (Trophic Level)

⇒ पारितंत्र में आहार-पोषण पदानुक्रम एवं कई स्तरों में सम्पन्न होता है। आहार के ये पदानुक्रम या विभिन्न स्तर जिनसे होकर ऊर्जा का आहार के माध्यम से गमन होता है, को पोषण स्तर (Trophic Level) कहते हैं।

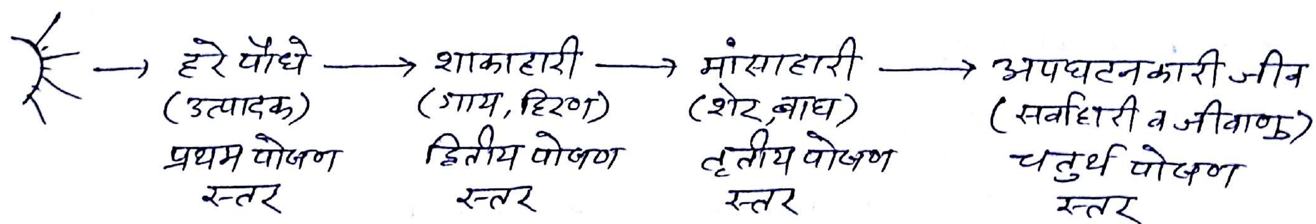
⇒ किसी भी आहार श्रृंखला में सामान्यतः 4 पोषण स्तर होते हैं। किसी भी आहार श्रृंखला में कम से कम 3 पोषण स्तर अवश्य होते हैं।

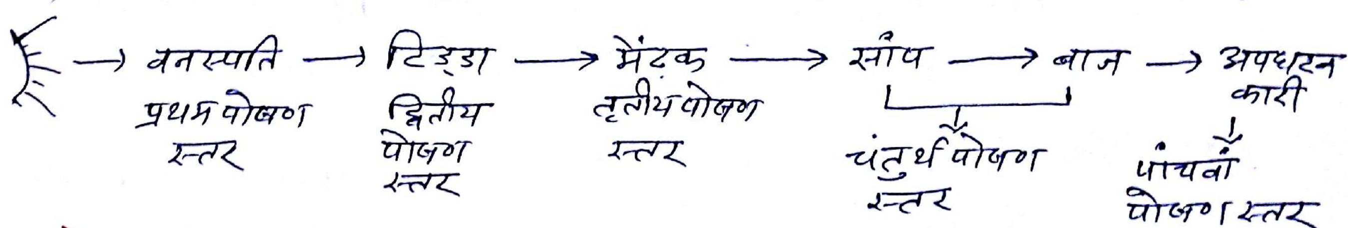
1. **पोषण स्तर:I :-** इसमें उत्पादक होते हैं ये वनस्पति समूह हैं जो प्रकाश ऊर्जा का रूपान्तरण रासायनिक ऊर्जा में करके आहार को प्राप्त करते हैं। ये स्वयंपोषी होते हैं।

2. **पोषण स्तर-II :-** इसमें शाकाहारी प्राणी होते हैं जो भोजन प्राप्ति के लिए प्रथम पोषण स्तर के जीवों/वनस्पति पर निर्भर रहते हैं जैसे - गाय, बकरी, हिरण, ऊँट, घोड़ा etc.

3. **पोषण स्तर-III :-** ये जन्तु अपने भोजन के लिए द्वितीय पोषण स्तर के शाकाहारी जीवों पर निर्भर रहते हैं। ये मांसाहारी होते हैं इन्हें द्वितीयक उपभोक्ता भी कहा जाता है। जैसे- शेर, चीता, बाघ, भालू, मेंढक, घड़ियाल, शार्क, छिपकली, मकड़ी etc.

4. **पोषण स्तर-IV :-** इस पोषण स्तर में उन जीवों को शामिल किया जाता है जो निचले तीन पोषण स्तरों से प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में अपना आहार प्राप्त करते हैं। चौथे पोषण स्तर में सर्वाहारी जीव एवं अपघटनकारी जीवों को शामिल किया जाता है जैसे - कुत्ता, मानव, जीवाणु, फँगस आदि।





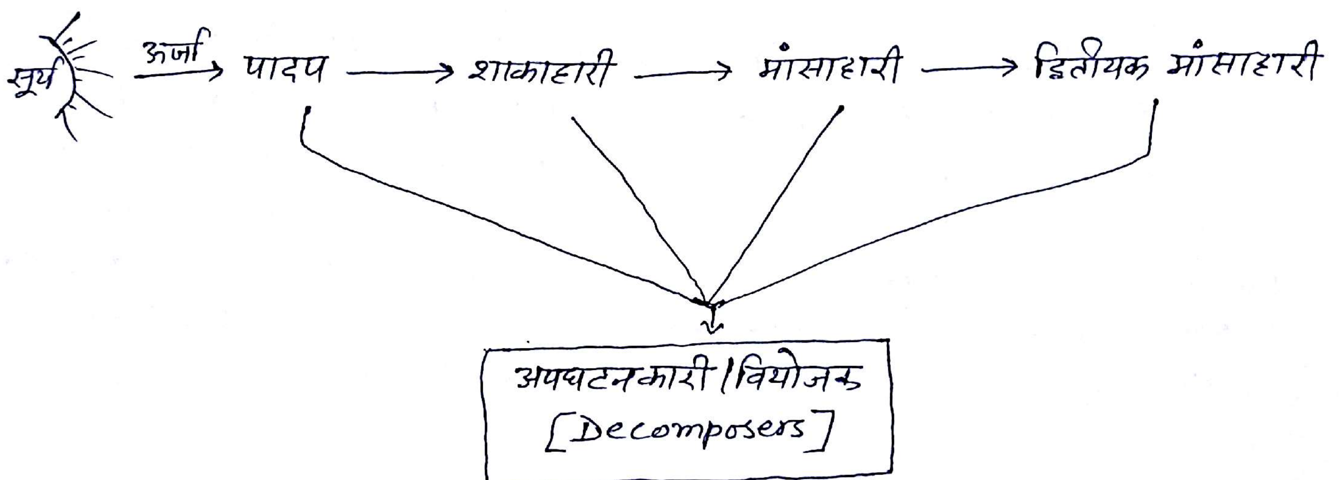
नोट:- किसी भी आहार श्रृंखला में 5 से अधिक पोषण स्तर नहीं हो सकते।

⇒ खाद्य श्रृंखला (Food chain):-

⇒ पारितंत्र में पोषण एक वर्ग के जीवों से दूसरी वर्ग के जीवों में श्रृंखलाबद्ध प्रकार से स्थानान्तरित होता है। इसी श्रृंखलाबद्ध पोषण स्थानान्तरण को आहार / खाद्य श्रृंखला (Food chain) कहते हैं।

⇒ खाद्य श्रृंखला में ऊर्जा का प्रवाह एक रेखीय होता है।

⇒ पारितंत्र में ऊर्जा का प्रवाह प्राथमिक उत्पादकों से प्राथमिक उपभोक्ता (शाकाहारी) में, प्राथमिक उपभोक्ताओं से द्वितीयक उपभोक्ताओं (मांसाहारियों) में तथा द्वितीयक उपभोक्ताओं से तृतीयक उपभोक्ताओं (मांसाहारी / सर्वाहारी) में होता है।



⇒ घास मैदान पारितंत्र खाद्य श्रृंखला :- घास → टिड्डा → मेंढक → सर्प → बाज

⇒ तालाब पारितंत्र खाद्य श्रृंखला :- फाइटोप्लैंक्टन → छोटी मछली → बड़ी मछली → पक्षी
(बड़ी मछली, पक्षी → बड़े जन्तु)

⇒ वन पारितंत्र खाद्य श्रृंखला :- i) पौधे → चूहे / गिलहरी → बिल्ली → जंगली कुत्ता

ii) झाड़ियां → खरगोश → भेड़िया / लकड़बग्गा → शेर / चीता

iii) वृक्ष → बंदर / लंगूर → तेंदुआ

⇒ खाद्य जाल [Food web] :-

क्या होता है खाद्य जाल?

खाद्य श्रृंखला में पारितंत्र में होने वाले खाद्य अथवा ऊर्जा का प्रवाह एक सीधा एवं सरल प्रतीत होता है परन्तु वास्तव में पारितंत्र में यह ऊर्जा प्रवाह सीधा व सरल न होकर एक जाल के रूप में होता है।

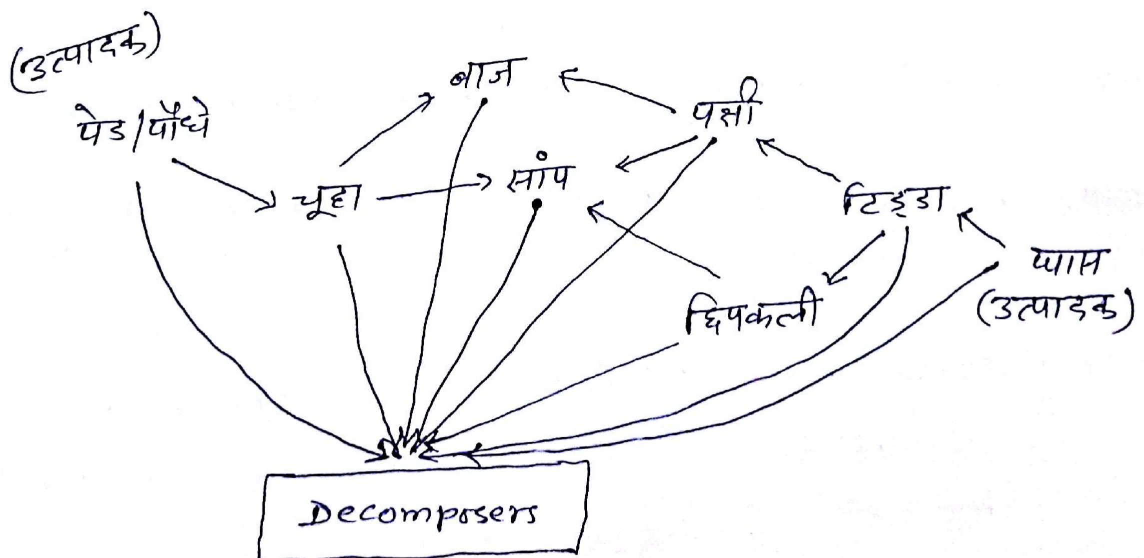
"जब संसाधनों उपलब्धता एवं शाकभक्षियों व मांसभक्षियों की पसन्द आदि के कारण सीधी खाद्य श्रृंखलाएँ नहीं बन पाती अपितु ऐसी स्थिति में विभिन्न खाद्य श्रृंखलाएँ आपस में जुडकर एक जाल का निर्माण करती हैं, यही खाद्य जाल (food web) कहलाता है।"

उदाहरण :-

i) एक ही पौधा एक ही समय अनेक शाकभक्षियों का आहार हो सकता है; घास पर खरगोश, टिड्डा, बकरी या गाय सभी निर्भर हो सकते हैं।

ii) अलग-अलग ऋतुओं में शाकभक्षियों/मांसभक्षियों की पसन्द भी बदल सकती है जैसे- हम गर्मियों में तरबूज व ठण्ड में नाशपाती खाते हैं।

iii) यदि प्रकृति में प्राथमिक उपभोक्ता (शाकाहारी) न होते तो उत्पादक (वनस्पति) अति प्रतिस्पर्द्धा और सघनता के कारण नष्ट हो जाते। इसी प्रकार प्राथमिक उपभोक्ताओं का अस्तित्व द्वितीयक उपभोक्ताओं से जुड़ा है।



पारिस्थितिकी पिरामिड
[Ecological Pyramids]

⇒ किसी भी पारितंत्र के उत्पादकों एवं विभिन्न श्रेणी के उपभोक्ताओं की संख्या, जीवभार, तथा संचित ऊर्जा में परस्पर एक प्रकार का सम्बन्ध होता है। इन सम्बन्धों को जब चित्र रूप में दिखाया जाता है तो इन्हें पारिस्थितिकी पिरामिड कहते हैं।

⇒ पारिस्थितिक पिरामिड मुख्य रूप से तीन प्रकार के होते हैं -

i) जीव संख्या का पिरामिड (Pyramid of Numbers)
ii) जीव भार का पिरामिड (Pyramid of Biomass)
iii) संचित ऊर्जा का पिरामिड (Pyramid of Energy)

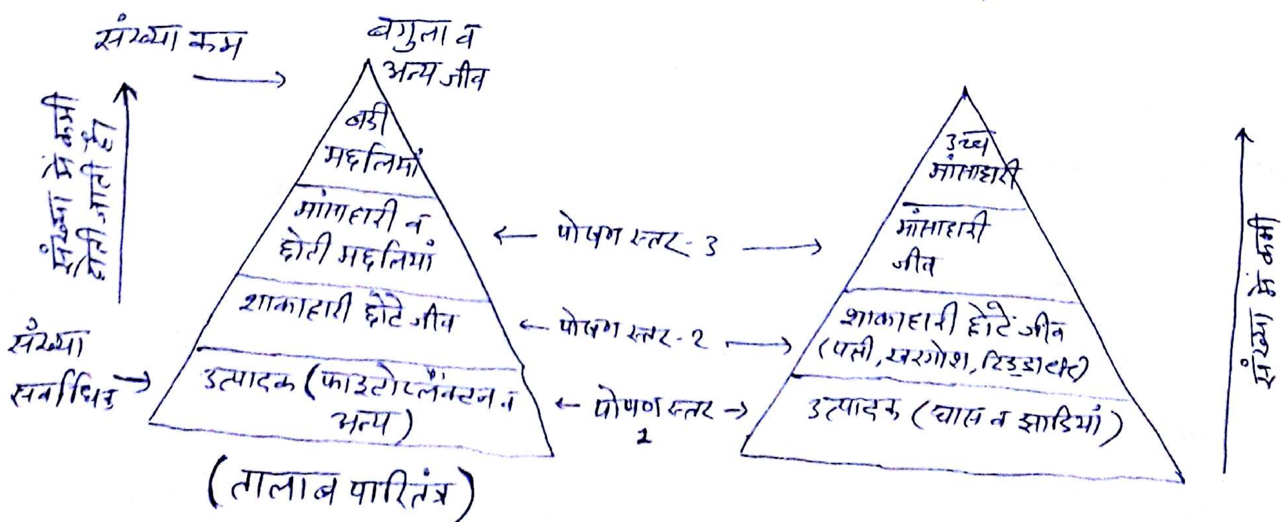
i) जीव संख्या का पिरामिड

⇒ इसमें प्राथमिक उत्पादकों और विभिन्न स्तर के उपभोक्ताओं की संख्या के बीच का संबंध दर्शाया जाता है।

⇒ संख्या का पिरामिड सीधा एवं उल्टा दोनों प्रकार का होता है।

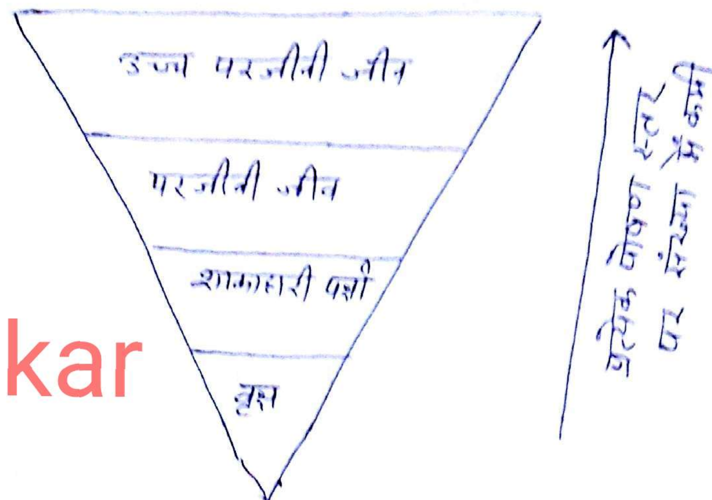
⇒ **सीधा संख्या पिरामिड :-**

* इस पिरामिड में बढ़ते पोषण स्तरों के साथ जीवों की संख्या में अत्यधिक कमी होती जाती है।
* पिरामिड आधार पर अत्यधिक चौड़ा और शीर्ष पर नुकीला हो जाता है।
* उदाहरण :- घास के मैदान, तालाब, फसल पारितंत्र इत्यादि



⇒ उल्टा संख्या पिरामिड :-

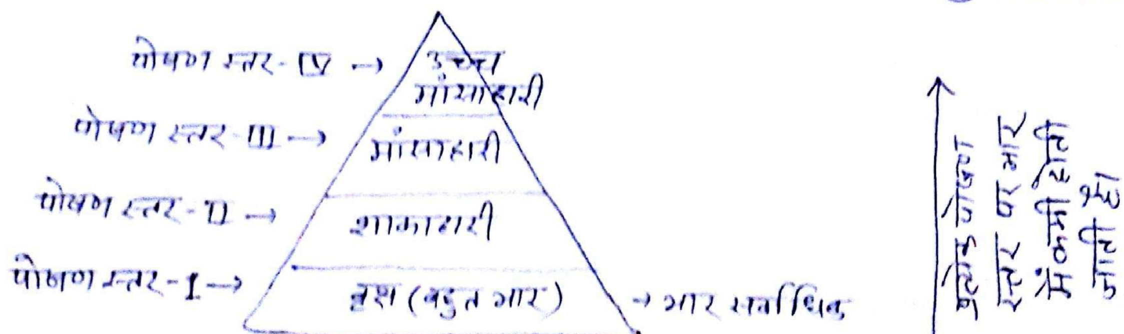
* प्रत्येक पोषण स्तर पर संख्या में वृद्धि होती जाती है।
* उदाहरण वृक्ष पारितंत्र, वन पारितंत्र
* यह पिरामिड आधार पर नुकीला व शीर्ष पर बहुत चौड़ा होता है।



ii) बायोमास पिरामिड

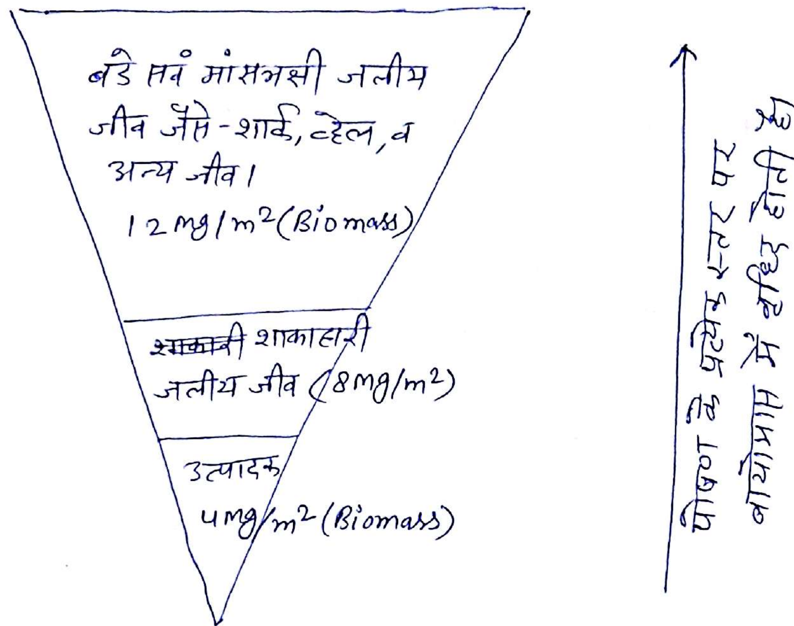
* पारितंत्र में खाद्य श्रृंखला तथा खाद्य जाल के सभी पोषण स्तरों पर भण्डारित समस्त जीवों में सकल भार के प्रदर्शन तथा अध्ययन के लिए बायोमास पिरामिड का प्रयोग किया जाता है। यह सीधा एवं उल्टा दोनों प्रकार का होता है।
* इसमें संख्या के स्थान पर उसके सकल भार को सम्मिलित किया जाता है।
* पिरामिड को निर्धारित करने के लिए प्रायः प्रत्येक पोषण स्तर पर मौजूद समस्त जीवों को एकत्रित कर उनके शुष्क भार का मापन किया जाता है।

⇒ **सीधा बायोमास पिरामिड :-** इसका आधार उत्पादकों का एवं शीर्ष पर लघु पोषण स्तर होता है।



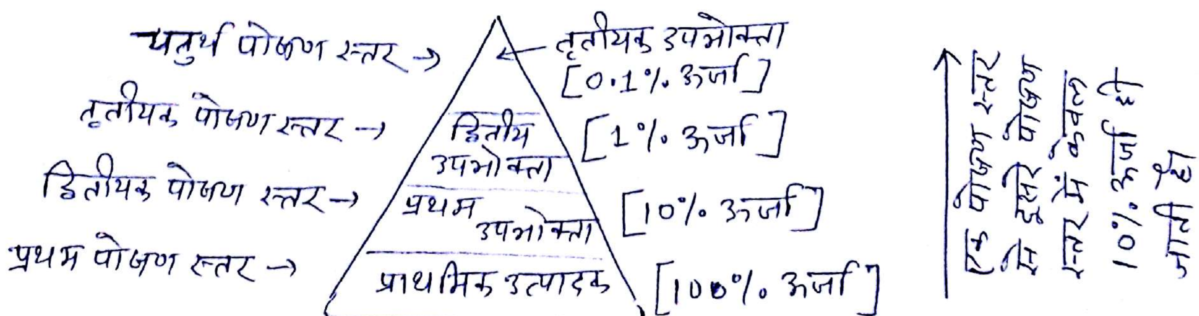
⇒ उल्टा बायोमास पिरामिड :-

* जलीय पारितंत्र में बायोमास का पिरामिड उल्टा हो सकता है क्योंकि जलीय पारितंत्र के उत्पादक संख्या में अधिक किन्तु भार में कम होते हैं।
* इस पिरामिड में किसी भी समय उपभोक्ता का बायोमास प्राथमिक उत्पादक के बायोमास से अधिक होगा।



iii) ऊर्जा का पिरामिड (Pyramid of Energy)

* यह ऊष्मा गतिकी के नियमों का पालन करता है।
* इसके द्वारा एक पोषण स्तर से दूसरे पोषण स्तर पर स्थानांतरित होने वाली ऊर्जा को दिखाया जाता है जीव संख्या एवं जीव भार पर ध्यान नहीं दिया जाता।
* यह सदैव सीधा बनता है क्योंकि उत्पादक (प्रथम पोषण स्तर) में सर्वाधिक ऊर्जा उपस्थित रहती है अन्य प्रत्येक स्तर में उसके पहले पोषण स्तर की ऊर्जा का मात्र 10% ही स्थानान्तरण होता है।



⇒ ऊर्जा स्थानान्तरण का 10% नियम [Ten Percent Law] :-

* 1942 में लिंडेमान ने इस नियम को प्रतिपादित किया।
* इस नियम के अनुसार, जब हम एक पोषण स्तर से दूसरे पोषण स्तर की ओर बढ़ते हैं तो ऊर्जा की मात्रा में धीरे-धीरे कमी होती जाती है। एक पोषण स्तर से दूसरे पोषण स्तर में मात्र 10% ऊर्जा ही स्थानान्तरित होती है।
* इसी नियम के अनुसार पारितंत्र में ऊर्जा का प्रवाह एकदिशीय होता है।

⇒ पारिस्थितिकीय दक्षता (Ecological Efficiency) :-

वह दक्षता जिसमें जीव अपना भोजन प्राप्त करते हैं तथा भोजन को जैवभार में परिवर्तित कर दूसरी उच्च स्तरीय पोषण रीति के लिए उपलब्ध कराते हैं। यह दक्षता ही पारिस्थितिकी दक्षता कहलाती है।

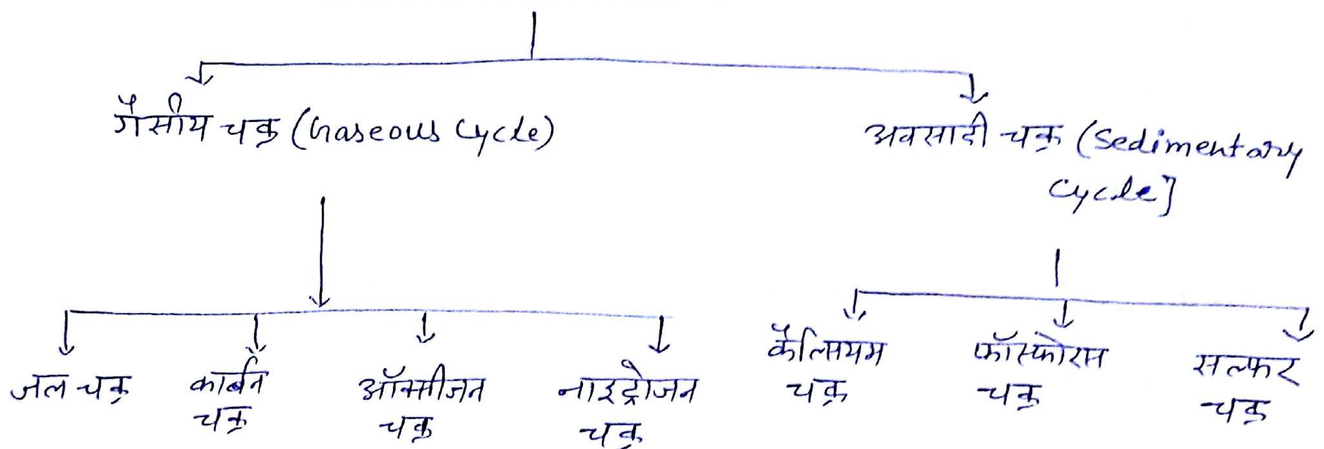
$$\text{पारिस्थितिकी दक्षता} = \frac{\text{पोषण स्तर पर जैव भार उत्पादन में प्रयुक्त ऊर्जा}}{\text{पूर्व पोषण स्तर पर जैवभार उत्पादन में प्रयुक्त ऊर्जा।}}$$

पारितंत्र में पदार्थों का संचरण
[Propagation of Matters in Ecosystem]

⇒ जैव भू रासायनिक चक्र :-

* पोषक तत्वों तथा महत्वपूर्ण लघु एवं दीर्घ तत्वों के जैविक से अजैविक या अजैविक से जैविक घटकों में गति के फलस्वरूप पारिस्थिति तंत्र में होने वाले पोषक तत्वों के प्रवाह की प्रक्रिया जैव भू रासायनिक चक्र कहलाती है।

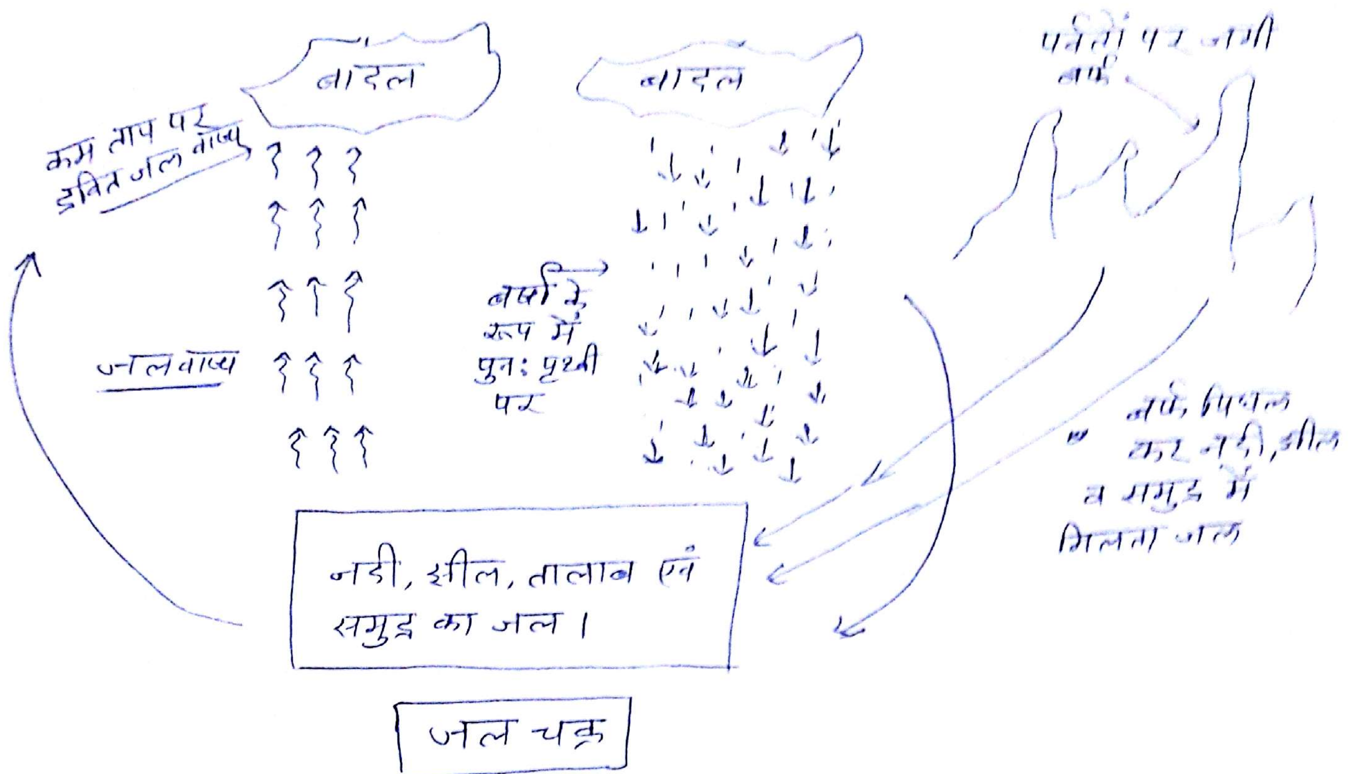
* पारितंत्र में पोषक तत्व कभी समाप्त नहीं होते बल्कि ये बार-बार पुनः चक्रित होते रहते हैं। एक पारितंत्र के विभिन्न घटकों के माध्यम से पोषक तत्वों की गतिशीलता को पोषण चक्र कहा जाता है।



⇒ गैसीय चक्र :-

i) जल चक्र (Water Cycle) :- जल गैस या वाष्प, ठोस (हिम) या तरल रूप में पाया जाता है।

* जलाशयों (झील, नदी, समुद्र) से जल वाष्पीकरण क्रिया द्वारा वातावरण में जल वाष्प के रूप में परिवर्तित हो जाता है व वृक्षों द्वारा वाष्पोत्सर्जन क्रिया से वातावरण में मिल जाता है।
* यह जलवाष्प संघनित होकर बादलों में परिवर्तित हो जाती है और ऊँचाई पर कम ताप के कारण द्रवित होकर वर्षा के रूप में पृथ्वी पर आ जाता है।
* यह वर्षा जल भूमि द्वारा सोख कर अथवा बह कर पुनः नदी, झील व समुद्र में पहुँच जाता है। यही चक्रीय क्रम जल चक्र कहलाता है।



* पृथ्वी पर उपस्थित स्वच्छ जल की मात्रा :-

i) हिम एवं ग्लेशियर - 75%
ii) भूमिगत जल - 24%
iii) झील - 0.3%
iv) नदी - 0.03%

(घटता क्रम ↓)

ii) **कार्बन चक्र (Carbon Cycle) :-** कार्बन वायुमण्डल में प्रधानतः CO_2 के रूप में पाया जाता है। जीवों का शुष्क भार का लगभग 49% भाग कार्बन का बना होता है।

* समुद्र में लगभग 71% कार्बन, विलेय के रूप में विद्यमान है। यह सागरीय कार्बन भण्डार वायुमण्डल में कार्बन डाई ऑक्साइड की मात्रा को नियमित करता है।

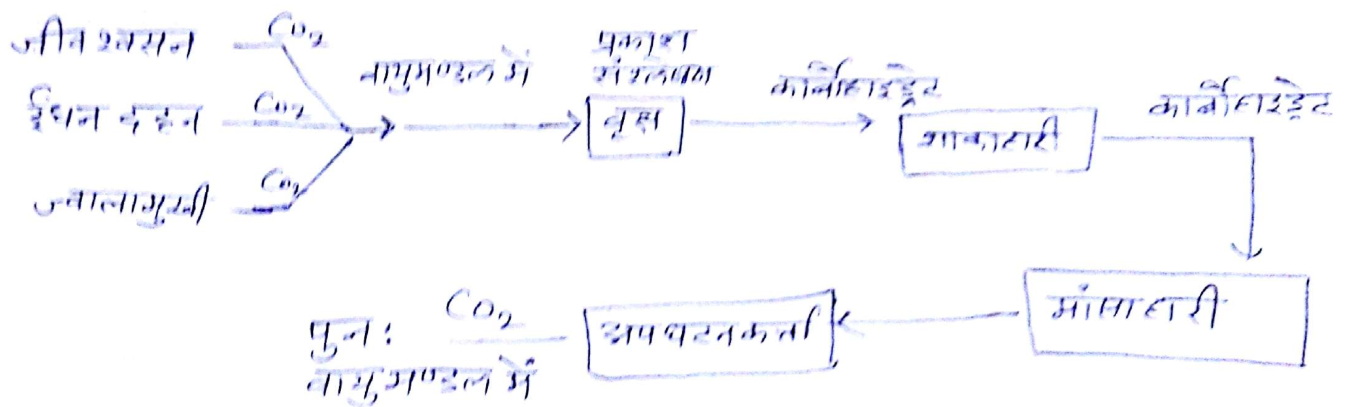
* कार्बन चक्र समय सीमा के अनुसार 2 रूप में पूर्ण होता है -

i) अल्पकालीन चक्र
ii) दीर्घकालीन चक्र

⇒ **अल्पकालीन कार्बन चक्र :-** यह चक्र अल्प समय में पूर्ण होता है और निरंतर चलता रहता है।

* कार्बन स्त्रोत :- जीवों द्वारा श्वसन के माध्यम से निकाली गयी CO_2, ईंधन व लकड़ी के जलाने से वायुमण्डल में पहुँची CO_2, ज्वालामुखी जैसी प्राकृतिक घटनाओं से वायुमण्डल में पहुँची CO_2

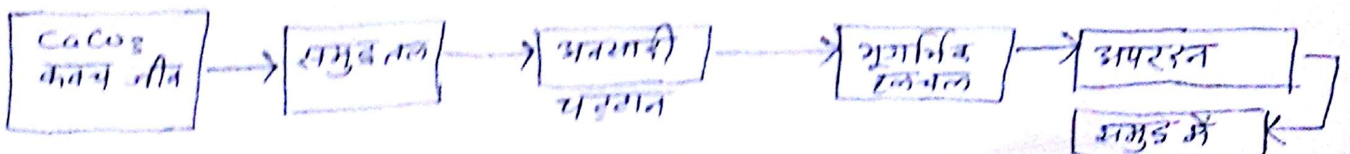
* कार्बन चक्र प्रक्रिया :- विभिन्न स्त्रोतों से प्राप्त CO_2 का उपयोग पौधों द्वारा प्रकाश संश्लेषण क्रिया में होता है और कार्बोहाइड्रेट का निर्माण होता है। अब यह कार्बोहाइड्रेट के रूप में कार्बन पोषण के विभिन्न स्तरों से होती हुई अपघटनकर्ताओं के माध्यम से पुनः वायुमण्डल में मिल जाती है।



⇒ **दीर्घकालीन कार्बन चक्र :-** यह चक्र कई सैकड़ों व हजारों वर्षों में पूर्ण होता है।

* कार्बन स्त्रोत :- विभिन्न समुद्री जीवों के कैल्सियम कार्बोनेट के कवच।

* कार्बन चक्र प्रक्रिया :- विभिन्न समुद्री जीव जिनका शरीर कैल्सियम कार्बोनेट ($CaCO_3$) का बना होता है [कोरल कवच] उनकी मृत्यु के पश्चात उनके कवच समुद्र की तली में इकट्ठा हो जाते हैं एवं दाब के कारण अवसादी चट्टानों के रूप में परिवर्तित हो जाते हैं। जब ये चट्टानें भूगर्भीय हलचल के परिणामस्वरूप ऊपर आ जाती हैं तो अपक्षय एवं अपरदन के माध्यम से ये कार्बन पुनः समुद्रों में पहुँच जाता है।



iii) नाइट्रोजन चक्र (Nitrogen Cycle) :-

* पारिस्थितिक तंत्र में नाइट्रोजन का अंतिम स्त्रोत वायुमण्डल में स्थित आण्विक नाइट्रोजन है जिसका पौधों और प्राणियों द्वारा सीधा उपापचयीकरण नहीं किया जा सकता।
* प्राकृतिक चट्टानों में नाइट्रोजन नहीं पाया जाता है, इसलिए मृदा निर्माण के समय नाइट्रोजन अनुपस्थित होता है।

⇒ **क्रियाविधि :-**

नाइट्रोजन चक्र दो चरणों में सम्पन्न होता है -

i) नाइट्रोजन स्थिरीकरण (Nitrogen fixation) : नाइट्रोजन से नाइट्रेट में परिवर्तन।

ii) विनाइट्रीकरण (Denitrification) : नाइट्रेट से नाइट्रोजन में परिवर्तन।

नाइट्रोजन स्थिरीकरण

* इसके अन्दर वायुमण्डल की स्वतंत्र आण्विक नाइट्रोजन (N_2) को नाइट्रेट में परिवर्तित कर पौधों द्वारा उपयोग करने लायक बनाया जाता है।
* यह क्रिया भी दो चरणों में सम्पन्न होती है -

A. अमोनियाकरण (Ammonification) :- नाइट्रोजन का अमोनिया में परिवर्तन।

B. नाइट्रीकरण (Nitrification) :- अमोनिया का नाइट्रेट में परिवर्तन।

A. अमोनियाकरण :-

* इस प्रक्रिया में वायुमण्डलीय नाइट्रोजन अमोनिया में परिवर्तित की जाती है।
* यह ऑक्सीजन की उपस्थिति में की जाती है।
* नाइट्रोजन यौगिकीकरण करने वाले जीवाणु - एजोबैक्टर, क्लॉस्ट्रीडियम, एनाबिना, ऑलोसिरा, नॉस्टॉक, राइजोबियम आदि जीवाणु हैं जो अमोनियाकरण एवं नाइट्रोजन स्थिरीकरण की प्रक्रिया में भाग लेते हैं।

B. नाइट्रीकरण :-

* इस प्रक्रिया में अमोनिया का नाइट्रेट में परिवर्तन होता है।
* यह क्रिया भी दो चरणों में सम्पन्न होती है -

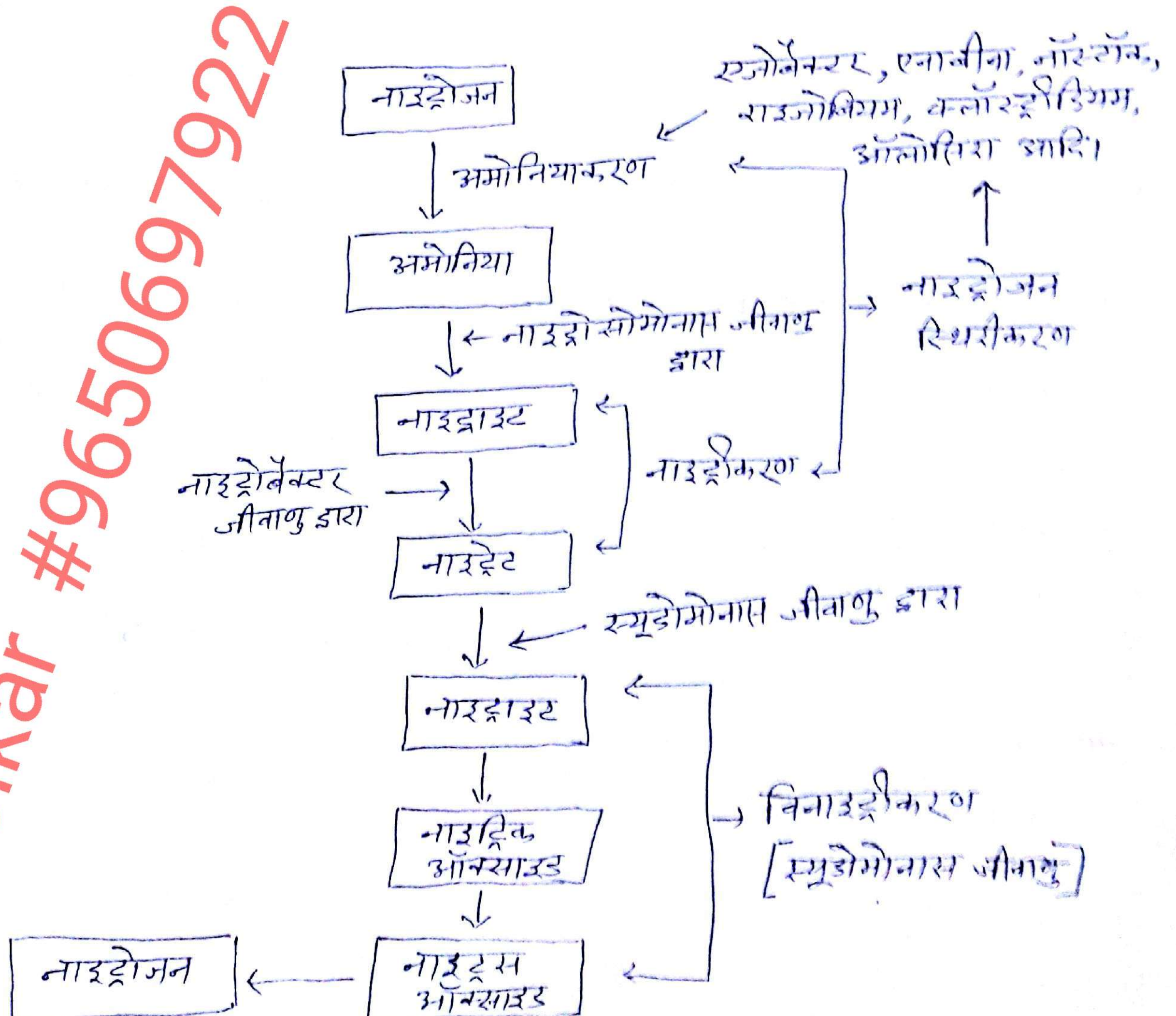
a. अमोनिया का नाइट्राइट में परिवर्तन - नाइट्रोसोमोनास जीवाणु द्वारा।

b. नाइट्राइट का नाइट्रेट में परिवर्तन - नाइट्रोबैक्टर जीवाणु द्वारा।

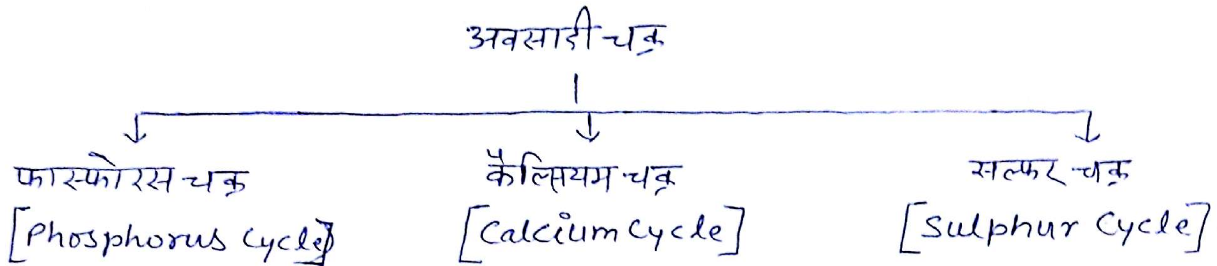
विनाइट्रीकरण (Denitrification)

* इस क्रिया में नाइट्रोजन स्थिरीकरण से प्राप्त नाइट्रेट को पहले नाइट्राइट में परिवर्तित किया जाता है फिर नाइट्राइट को नाइट्रिक ऑक्साइड में बदला जाता है बाद में क्रमशः नाइट्रस ऑक्साइड और फिर नाइट्रोजन में परिवर्तित कर दिया जाता है।
* विनाइट्रीकरण करने वाले जीवाणु - स्यूडोमोनास

इस प्रकार वायुमण्डल की स्वतंत्र आण्विक नाइट्रोजन पहले अमोनिया में फिर नाइट्राइट में और फिर नाइट्रेट में परिवर्तित होती है। विनाइट्रीकरण की प्रक्रिया में यह नाइट्रेट पहले नाइट्राइट में फिर नाइट्रिक ऑक्साइड और उसके बाद नाइट्रस ऑक्साइड में और अन्ततः नाइट्रोजन में परिवर्तित होकर पुनः वायुमण्डल में पहुंच जाती है।



⇒ अवसादी चक्र (Sedimentary Cycle)



1. फास्फोरस चक्र

* फास्फोरस का प्राकृतिक भण्डार चट्टानों में है जो कि फास्फेट के रूप में फास्फोरस को संचित किए हुए है।
* जब चट्टानों का क्षय होता है तो थोडी मात्रा में ये फॉस्फेट भूमि पर जल में घुल जाते हैं एवं पादपों की जड़ों द्वारा अवशोषित कर लिया जाता है। शाकाहारी एवं अन्य जानवर इन तत्वों को पौधों से प्राप्त करते हैं।
* कचरा उत्पादों एवं मृत जीवों को फास्फोरस विलेयक जीवाणुओं द्वारा अपघटित करने पर फास्फोरस मुक्त होता है एवं पुनः मृदा में मिल जाता है।
* फास्फोरस चक्र तीन माध्यमों से अलग अलग रूप में पूर्ण होता है।

i) **वायु द्वारा :-** (न्यूनतम)

चट्टानें —(वायु अपरदन)→ वातावरण में —(जमाव द्वारा)→ जमीन या चट्टानों पर

ii) **जल द्वारा :** (अति अल्प)

चट्टानें —(जल अपरदन)→ नदियों में —(बहाकर)→ समुद्र में → समुद्र किनारे या समुद्र में जमा —(भूगर्भिक हलचल)→ चट्टानें

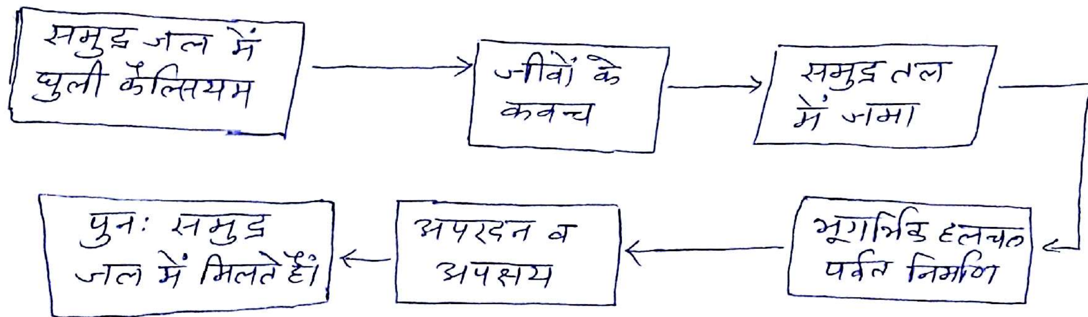
iii) **स्थल द्वारा :-** (सर्वाधिक)

मृदा में फास्फेट → पौधों में → शाकाहारी → मांसाहारी → अपघटन कर्ता द्वारा मृदा में

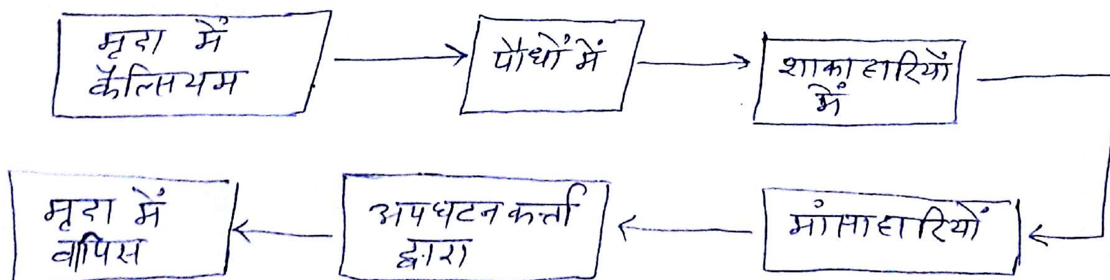
2. कैल्सियम चक्र

* पृथ्वी पर कैल्सियम के दो मुख्य स्त्रोत समुद्र एवं मृदा हैं।
* कैल्सियम चक्र भी दो प्रकार से पूर्ण होता है।
  i) महासागरों में
  ii) मृदा द्वारा स्थल भाग पर

i) **महासागरों में :-** महासागरों में कैल्सियम जल में घुला रहता है एवं जलीय जीव इस कैल्सियम का उपयोग अपने कवच बनाने के लिए करते हैं। जलीय जीवों की मृत्यु के पश्चात उनके कवच समुद्र की तली में जमा होते जाते हैं जब कभी भूगर्भिक हलचल होती है तो ये कैल्सियम एक पर्वत के रूप में बदल जाती हैं तथा पुनः अपक्षय एवं अपरदन द्वारा यह कैल्सियम समुद्र जल में मिल जाती है।



ii) **मृदा द्वारा :-** मृदा में उपस्थित कैल्सियम को वृक्षों की जड़ों द्वारा अवशोषित किया जाता है पौधों से यह शाकाहारियों एवं अन्य पोषण स्तरों से होता हुआ अपघटनकर्त्ता तक पहुँचता है। अपघटनकर्त्ता जीवों के मृत शरीर एवं वनस्पतियों के कूड़े को अपघटित कर इस कैल्सियम को पुनः मृदा में विलीन कर देते हैं।

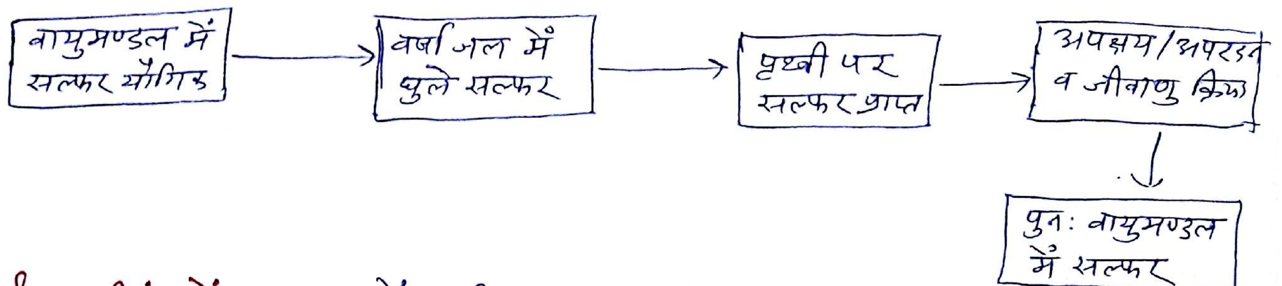


3. सल्फर चक्र

* सल्फर प्रोटीन का एक महत्वपूर्ण घटक है। यह गैसीय और अवसादी दोनों चक्रों में पाया जाता है।
* सल्फर चक्र दो प्रकार से अलग-अलग माध्यमों में पूर्ण होता है -
  - i) वायुमण्डल में
  - ii) स्थलीय पारितंत्र में

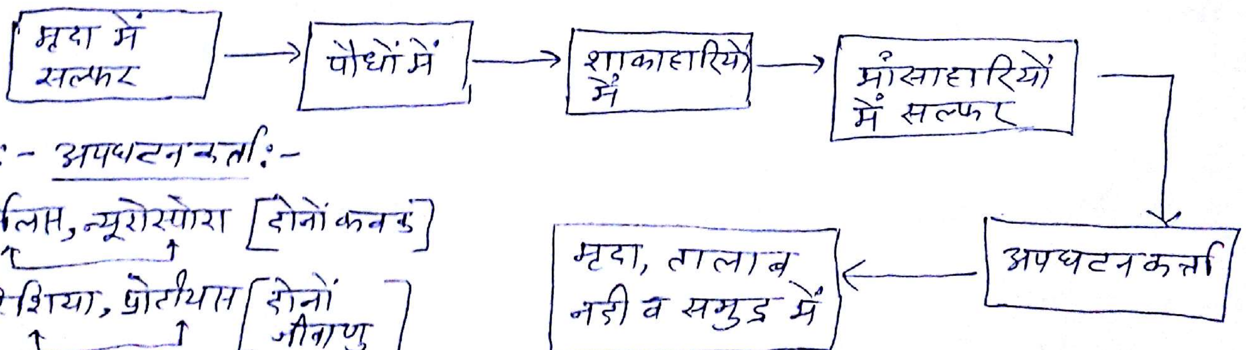
i) वायुमण्डल में :-

* गंधक/सल्फर के स्रोत : ज्वालामुखी, जीवाश्म दहन, महासागरीय सतहों का विघटन [सभी स्रोतों में गैसीय यौगिकों के रूप में उपस्थित]
* वायुमण्डल में विद्यमान गैसें, वर्षाजल से क्रिया कर विभिन्न अम्ल एवं अन्य यौगिकों के रूप में जमीन तक पहुँचती हैं तथा विभिन्न जीवाणुओं द्वारा एवं अपरदन अपक्षय द्वारा पुनः वायु में मिल जाती हैं।



ii) स्थलीय पारितंत्र में :-

मृदा में उपस्थित सल्फर को अवशोषित कर पौधे अमीनो अम्ल का निर्माण करते हैं जो पौधों में प्रोटीन के रूप में समाहित हो जाता है। पौधों से यह प्रोटीन शाकाहारियों एवं माँसाहारियों तक पहुँचती है। उपभोक्ताओं व उत्पादकों के मृत शरीर व वनस्पति को अपघटनकर्ता अपघटित करते हैं। यहाँ से सल्फर निकलकर पुनः मृदा, तालाबों व झीलों एवं समुद्र की तली में पहुँच जाती है।



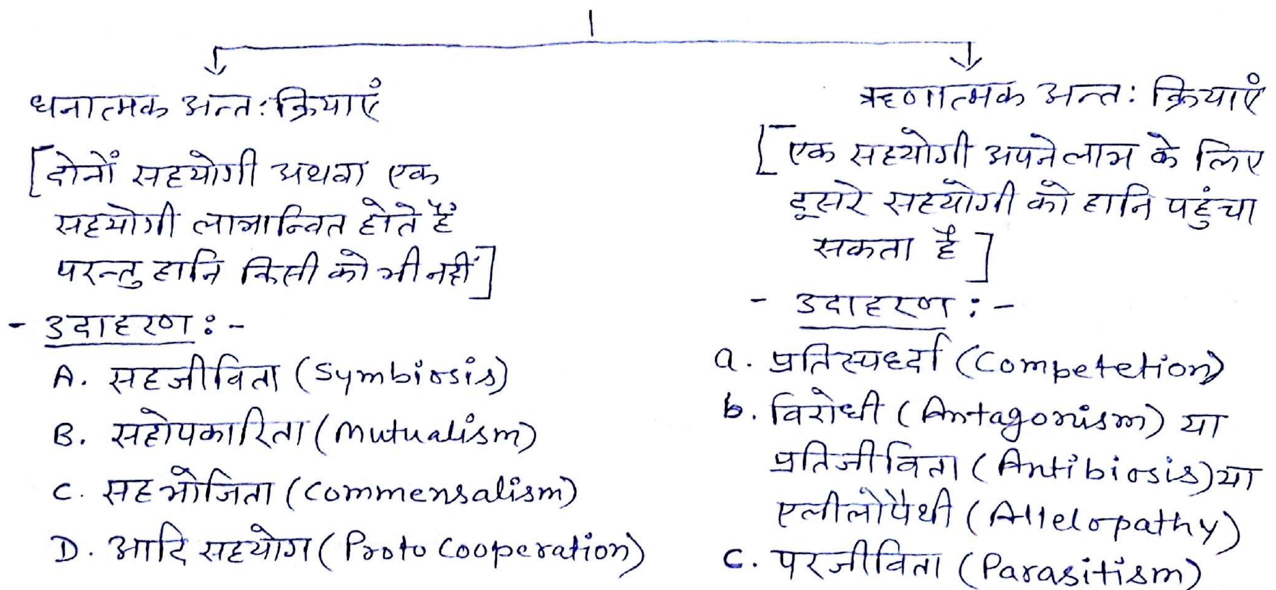
नोट :- अपघटनकर्ता :-

एस्पर्जिलस, न्यूरोस्पोरा [दोनों कवक]

एश्चेरेशिया, प्रोटीयस [दोनों जीवाणु]

जैविकीय संबंध
[Biotic Relations]

* जैविक समुदायों में पौधे, जन्तुओं और सूक्ष्मजीवों के समुदाय, ऊर्जा संसाधन और स्थान के लिए एक दूसरे से अन्त: क्रियाएं करते रहते हैं।
* सभी जीव पारितंत्र के सफल संचालन में तथा ऊर्जा के प्रवाह और पोषक तत्वों के चक्रण में मुख्य भूमिका निभाते हैं।
* अंत: क्रियाएँ मुख्यत: दो प्रकार की होती हैं -



⇒ धनात्मक अन्त: क्रियाएँ :-

A. सहजीविता (Symbiosis) :- जब दोनों सहयोगी समान रूप से लाभान्वित होते हैं और हानि किसी को भी नहीं होती।

B. सहोपकारिता (Mutualism) :- इसमें भी दोनों सहयोगी समान रूप से लाभान्वित होते हैं। किसी को भी हानि नहीं होती।

उदाहरण :- लाइकेन (Lichens) = कवक + शैवाल

- इसमें कवक जलधारण कर सकते हैं किन्तु भोजन नहीं बना सकते एवं शैवाल भोजन बना सकते हैं किन्तु जलधारण नहीं कर सकते।
- इस प्रकार कवक शैवाल को जल उपलब्ध करता है एवं शैवाल कवक को भोजन उपलब्ध करता है अन्तत: दोनों लाभान्वित होते हैं,

C. सहभोजिता (Commensalism) :-

* यह एक ऐसा संबंध है जिसमें केवल एक जीव लाभान्वित होता है तथा अपने सहयोगी को बिना नुकसान पहुँचाएँ उसके साथ अपना जीवन व्यतीत करता है।
* उदाहरण :- रेमोरा मछली तथा शार्क मछली
- रेमोरा मछली एक छोटी सी मछली होती है जो शार्क की निचली सतह पर उससे चिपकी रहती है और शार्क के भोजन से बचा-कुचा कचरा खाती है।
- रेमोरा की मौजूदगी से शार्क को लाभ नहीं पहुँचता और न ही हानि पहुँचती है।

D. आदिसहयोग (Protocooperation) :-

* यदि दोनों ही सहयोगी भौतिक संबंध स्थापित किए बिना ही परस्पर लाभान्वित होते रहते हैं तो इसे आदिसहयोग कहते हैं। अर्थात् इसमें सहयोगी शारीरिक रूप से एक दूसरे से नहीं मिलते।

⇒ ऋणात्मक अन्तः क्रियाएँ :-

a. प्रतिस्पर्द्धा (Competetion) : इसमें दो या दो से अधिक सदस्यों के बीच स्थान, जल, खनिज, ऊर्जा एवं अन्य संसाधनों के लिए प्रतिस्पर्द्धा होती है।

b. प्रतिजीविता (Antibiosis) :- जटिल उपापचयी क्रियाओं द्वारा उत्पन्न वृद्धि रोधक, विषाक्त रासायनिक पदार्थों के स्त्राव द्वारा जब एक जीव, किसी दूसरे जीव की वृद्धि को पूर्ण रूप से या आंशिक रूप से रोक देता है तो इसे विरोधी अथवा प्रतिजीविता कहते हैं। इस क्रिया में अन्ततः किसी भी जीव को कोई लाभ नहीं होता।

* उदाहरण :- पेनिसिलियम, क्लोडोस्पोरियम या स्ट्रेप्टोमाइसीज ऐसे सूक्ष्म जीव हैं जो अपने निकट विशेष रासायनिक पदार्थों का स्त्राव करते हैं और वहाँ उगने वाले अधिकांश पौधों और जीवाणुओं की वृद्धि में बाधक होते हैं।

c. एलीलोपैथी (Allelopathy) :- कुछ ~~पदार्थों~~ पादपों द्वारा एलजिक रसायनों का स्त्राव होता है जो प्रतिस्पर्द्धी पौधों की वृद्धि को रोकने या मारने में सक्षम होते हैं। इस प्रकार के प्रभाव को एलीलोपैथी (Allelopathy) कहते हैं।

d. परजीविता (Parasitism) :- वे विषमपोषी (Heterotrophic) जीव जो अपने परपोषी के शरीर से आहार प्राप्त करते हैं, परजीवी कहलाते हैं।

अनुक्रमण : समुदाय में परिवर्तन
[Succession : Community change]

⇒ क्या होता है अनुक्रमण ?

* समुदाय कभी भी स्थिर नहीं होते इनमें निरंतर समय और स्थान के साथ-साथ परिवर्तन होते रहते हैं। अनुक्रमण सैकड़ों या हजारों वर्षों में वानस्पतिक समुदायों की रचना और आकार में आने वाली विभिन्नताओं को व्यक्त करता है।
* यह एकलपथगामी (Unidirectional), पारिस्थितिक समय में होने वाला वानस्पतिक परिवर्तन है।
* ओडम (Odum) के अनुसार अनुक्रमण :-
  - अनुक्रमण खाली भूमि या स्थान पर समय के साथ वानस्पतिक समुदायों के क्रम में होने वाले परिवर्तन हैं।
  - यह समुदायों के द्वारा भौतिक पर्यावरण में उत्पन्न परिवर्तनों के फलस्वरूप परिलक्षित होता है, जो परिवर्तन के ढंग, दर और प्रभाव पर निर्भर करता है।
  - अनुक्रमण चरम समुदाय के स्थापित होने तक निरंतर चलता रहता है जिसमें प्रति यूनिट ऊर्जा प्रवाह, जीवभार और जीवों के बीच सहयोगी कार्य की प्रमुख भूमिका होती है।

⇒ अनुक्रमण की प्रक्रिया :-

अनुक्रमण की प्रक्रिया 5 चरणों में पूर्ण होती है -

i) न्यूडेशन (Nudation)
ii) आक्रमण (Invasion)
iii) प्रतिस्पर्द्धा (Competetion)
iv) प्रतिक्रिया (Reaction)
v) चरम अवस्था (climax stage)

i) न्यूडेशन (Nudation):- नवीन समुदाय (Pioneer Community) के आगमन के लिए खाली स्थान प्रदान करने की प्रक्रिया न्यूडेशन कहलाती है।

ii) आक्रमण (Invasion):- बाहर से अनेक नई जातियों का अनुक्रमण के क्षेत्र में अनाधिकार प्रवेश आक्रमण कहलाता है। इस प्रक्रिया में निकट क्षेत्रों से प्रकीर्णन के विभिन्न माध्यमों से फलों या बीजों के द्वारा अनेकों प्रजातियों का नए स्थान पर पहुँचकर उगना आस्थपना (Ecesis) कहलाता है।

iii) प्रतिस्पर्द्धा (Competetion):-

एकत्रीकरण (Aggregation) के फलस्वरूप संसाधन और स्थान दोनों ही कम पड़ने लगते हैं। इसके कारण अन्तरजातीय (Intraspecies) और अन्तराजातीय (Interspecies) स्पर्द्धा प्रतियोगिताएँ शीघ्र ही प्रकट होने लगती हैं।

डार्विन के सिद्धान्त "जीवन के लिए संघर्ष" और "योग्यतम की उत्तरजीविता (Survival of the fittest)" में केवल वही प्रतियोगी सफल होते हैं जो सभी प्रकार से स्वस्थ और योग्य हों। आक्रामक सदैव ही वहाँ उगने वाले समुदाय से अधिक योग्य होता है।

iv) प्रतिक्रिया (Reaction):-

पादप समुदाय और पर्यावरण एक दूसरे से पदार्थों के आदान-प्रदान के समय प्रतिक्रिया व्यक्त करते हैं।

v) चरम अवस्था (Climax stage):-

अनुक्रमण की क्रिया में सबसे अंत में चरम अवस्था प्राप्त होती है। निश्चित तौर पर यह कहा जा सकता है कि चरम अवस्था में समुदाय और पर्यावरण के बीच बहुत ही उचित आपसी सामंजस्य स्थापित हो जाता है, जिसके फलस्वरूप दोनों संतुलन को प्राप्त होते हैं। यह अवस्था पारिस्थितिक संतुलन के लिए आवश्यक है।